विभाग : 16

ध्यान विद्या

जीवन में घटती हुई विविध घटनाओं पर ध्यान

धारणा - 140

आत्मस्वरूप भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 140

आकृति रहित आकाश आत्म है, बिनु आवरण शुद्ध स्वात्म्य है।
साधक जब भावे यह भावा, स्व स्वरूप शुद्ध चित्त में आवा।।

ध्यान विधि - 140

आवृत्ति रहित महा आकाश पर ध्यान करते करते आत्मस्वरूप में विलीन हो जाओ ।

ध्यानावस्था में तीव्र धारणा के द्वारा आप स्वयं को अनुभव करा देंगे कि आत्मा, "तत्व रूप" है। वह अंतराकाश आकृतिरहित, निरावरण और उसके विशिष्ट स्वभाव में राचने वाला है फिर भी प्रकृति का सहायक है। तब आपका शुद्ध स्वरूप सदा ही चित्त में स्थिर रहेगा। आप कर्ता होने पर भी अकर्ता, भोक्ता होने पर भी अभोक्ता भाव में सदा मुक्त अवस्था में प्रसन्न रहेंगे।

प्रिय साधको!

आकाश! वह क्या है? कुछ नहीं फिर भी सबकुछ है। धरती पर खड़े हुए मानव को आकाश के बिना चला है कभी? कितना अनुकूल होता है आकाश मानव को? छिद्र से, दरार से, खिड़की से, द्वार से, झरोखों से, या मैदान से .. जहाँ से भी देखो, आकाश ऐसा ही रूप धर लेता है; चुपचाप।

दोस्तो! यहाँ क्षुद्र जीव भी उपद्रव कर रहे हैं। पर आसमान विराट होने पर भी कितना शांत, स्थिर, उदार!! फिर भी प्रत्येक आकृतियों के पार, क्रिया के पार, सर्वसाक्षी। वहाँ सूरज जलता है! चांद खिलता है! परंतु वह तो सबसे अछूता! वहाँ पंछी उड़ता है, प्लेन भी! परंतु कभी किसी को नहीं चिटका। वहाँ बादल भी है! बिजली भी है! भाप भी! धुंआ भी! धूलि भी! परंतु आकाश किसी में भी नहीं, सबकुछ आकाश में भले हो। वही आकाश अंतरिक्ष में, सबमें है; फिर भी अदृश्य, पकड़ के पार, अनन्त, हजारों ध्वनियों का आवास रहकर भी नि:शब्द, अरबों-खरबों तरंगो के द्वारा घिरा हुआ होने पर भी मुक्त। अनगिनत परमाणुओं से छाया

हुआ फिर भी शुद्ध। उसकी ओर सब ताकते हैं परंतु वह सदा सर्वसाक्षी रहता है।

प्यारे साधको!

अभी तो और बहुत कुछ कहने को है, आकाश के बारे में। परंतु आकाश के संदर्भ में जितना भी कहेंगे सब कम पड़ जाएगा। सभी व्याख्याएं अधूरी रह जाएंगी, सभी विशेषण छोटे पड़ जाएंगे। आपको लगेगा कि यह तो अजीब है, ऐसा क्यों?

इस क्यों का जवाब आज तक किसीके पास नहीं है। वेद, उपनिषद्, शास्त्र, पुराण और साभी विद्वज्जन उसके बारे में चर्चा कर सकते हैं परंतु पूरी-पूरी व्याख्या नहीं। क्योंकि कुदरत की कुछ बातें अपनेआप में लाजवाब हैं।

दोस्तो, ऐसा ही है आत्म आकाश का। उसे वेद कभी हृदयाकाश कहते हैं, कभी चिदाकाश, तो कभी अंतर आकाश। वैसे तो आकाश पंचतत्व में से एक है। जब वह अन्य चार से अर्थात अग्नि, वायु, पृथ्वी और जल से मिलता है तब शरीर की संरचना का प्रारंभ होता है। हमारे मनीषियों के आधार पर कह सकते हैं कि ऐसे चौरासी लाख जीवों में आत्मा की सत्ता के कारण सम्यक संचलन शुरु होता है, चहल-पहल शुरु होती है, वह जीव प्रवृत्तिशील और गतिशील होता है। आत्मा जीव की प्रकृति के अनुकूल रहकर भी साक्षी बना रहता है।

प्यारे भक्तो!

आत्म स्वरूप भाव ध्यान में, इसी स्वरूप को जानने, समझने और उसमें सदा लीन रहने का प्रयास करना है।

उसके प्रति प्रगतिशील रहकर बहिर्मुखता के पार जान है।

गति जीवन है गति गीत है
गति महा संगीत है,
गतिशील जो जीव नहीं
वो ही मृत्यु से भयभीत है।

गतिमयता का मर्म समझ ले
तब साधक सद्गति होगी,
यती सती योगी भोगी की
गति बिना अवगति होगी।

या गति को अध्यात्म कहो
या सन्मुख कहो ईश्वर से,
अथवा कह दो पूर्ण जागृति
निर्ममत्व कहो नश्वर से।

प्यारे साधको!

आदमी दुन्यवी रूप से प्रगतिशील होता जा रहा है परंतु उसकी आंतरिक गति अवरुद्ध हो रही है। मनुष्य की अवनति का यही कारण है। आंतरिक अथवा आध्यात्मिक रूप से गतिशील मनुष्य कभी अध:पतित नहीं होता।

दोस्तो, यह ध्यान विधि आपकी आंतरिक गति को वेग देगी। विधि कहती है कि आत्म आकाश आकृति रहित है। यह बात आप विविध भाषा में, विविध रूप से अनेक बार सुन चुके होंगे। जैसे कि आत्मा, अगुण, अरूप, अलक्ष्य, अन्नत, अजन्मा और अविनाशी है.... इत्यादि।

दोस्तो, ध्यान विधि के आरंभ में मैंने केवल आकाश का वर्णन ही किया था। क्यों? क्योंकि मैं यह कहना चाहती हूँ कि आकाश तत्व भले

समर्थ है परंतु आकार धारण करने के लिए, घनता के लिए उसे अन्य चार तत्वों का आधार लेना पड़ता है। जिसका उल्लेख मैंने आगे किया है। फिर पांच तत्व मिलकर केवल स्थूल आकार बनते हैं। ये पांचों तत्व अपने–अपने स्थान पर सामर्थ्यवान हैं। उस स्थूल में प्रवेश करके अदृश्य रहने पर भी दृश्यमान कलाएं करने वाला आत्माकाश कितना अदभुत होगा! समर्थ होगा!! विधि कहती है –

आकृति रहित आकाश आत्म है.. ..

आत्माकाश आकृति से पर है अर्थात रूप रंग से पर है। वह दिखने पर भी नहीं दिखाई देता और जानने पर भी नहीं जाना जा सकता। पाने पर भी पाया नहीं जा सकता। और खोने पर भी वह खोता नहीं। यह बात तो तभी समझ में आएगी जब ध्यान के द्वारा आप अंतर्दृष्टि पाएंगे। मैंने एक भजन में लिखा है –

अंतर की आंखे खोल, मनवा मनकी आंखे खोल
इक पल भी ना दूर है तुझसे, नाता जनम जनम का उससे
किसको खोजत किसको ढूँढत, सोच समज के बोल ... मनवा
घर की गठरिया घर में भूला, सपनों के झूलों पे झूला
नींद तेरी टूटे तो मनवा, निज आनंद में डोल ... मनवा
तेरा साहिब तुझ आत्मा है, तू ही तेरा परमात्मा है
जाग जतन करी सत्य समझ ले, 'मोहिनी' कुछ ना बोल... मनवा

इस शरीर रूपी आवरण से ढंका होने पर भी उसे निरावरण कहा है क्योंकि उसकी शक्तियाँ कोई ढांक नहीं सकता।

दूसरे चरण में विधि कहती है –

बिनु आवरण शुद्ध स्वात्म्य है।

आपको भ्रम भले हो कि वह माया के आवरण से ढंका हुआ है परंतु वह निरावरण सदा अपने मूल स्वरूप में रहने वाला स्वात्म्य है।

प्यारे भक्तो!

स्वात्म्य का अर्थ क्या है? यह वैसे तो संस्कृत शब्द है और आयुर्वेद का है। आयुष्य के वेद में स्वात्म्य शब्द की बड़ी महिमा है। यहाँ ध्यान सूक्ति में मैंने स्वात्म्य शब्द का प्रयोग किया है। स्वात्म्य का अर्थ है प्रकृति के अनुकूल, स्वास्थ्यकर।

दोस्तो, स्वास्थ्य का मूल आधार है, आत्मा। आत्मा की गैर मौजूदगी में मनुष्य स्वास्थ्य की कल्पना तक नहीं कर सकता। देह, इन्द्रियाँ, मन, वात, पित्त, कफ . . . . . सब बाद में आते हैं। केन्द्र में आत्मा है। वही स्वास्थ्य का परम कारण है और प्रकृति का सहायक भी। स्वात्म्य का एक अर्थ स्वभाव भी होता है।

मनुष्य का मूल स्वभाव क्या है? "आनन्द"। आत्मा आनन्द का मूल स्रोत है। वह विशुद्ध ज्ञानरूप है और स्वय सत्य।

प्यारे साधको!

मनुष्य अज्ञान के कारण सुख और आनन्द के लिए बाहर भटकता है परंतु अपने भीतर के विश्व का ध्यान के द्वारा अनुभव करे तो पता चले कि आज तक बाहर भटके वह बहुत बड़ी गलती थी। दुनियाँ के सभी नशों से उत्तम और श्रेयष्कर नशा तो भीतर ही भरा है।

दीवानों का आलम है नया
ना खोना है ना पाना है
बनने की बातें बंद करो
यहाँ आकर तो मिट जाना है।

ना उतरेगा मस्ती का नशा
हर लम्हा बढ़ता जाता है
एक बार तो पीकर देखो तुम
लज्जत को बढ़ाता जाता है।

यहाँ मैकश मैख़ाने दोनों
हैं एक कभी भी ना है जुदा
हम लेते हैं उस मय का मज़ा
जो अंदर से ही उभरती है।

इस पैमाने को हर कोई
ऐसे ना छूने पाता है
जो छूता वो जल जाता है
जलकर रोशन हो जाता है।

ना प्यास कभी ये बुझती है
ना आस कभी ये टूटती है
पीते जाओ पीते जाओ
ये कायम बढ़ती जाती है।

तुम बेशुमार बेहोशी में
जीना चाहो तो जी जाओ
मरने के पहले मर जाओ
ये शर्त हमारी होती है।

प्यारे साधको!

आपको जब पता चल जाएगा कि मेरे भीतर ही अमृत को पीने वाला, पिलाने वाला और उसके मीठे झरने बह रहे हैं तब उसकी प्यास

कभी भी नहीं बुझेगी। न ही कोई आशा टूटेगी क्योंकि ध्यान के द्वारा बोध को उपलब्ध होकर आप निरर्थक आशाओं में नहीं राचेंगे।

ध्यान के द्वारा सजगता आ जाने के बाद आसमान के चांद सितारे तोड़ लाने की बातें हो ही नहीं पाएंगी। इस सजगता में मोघ आशा के लिए कोई स्थान ही नहीं है। आप अपने भीतर के प्रकाश से ही परितृप्त हो जाएंगे। आपके सानिध्य में आने वाला भी एक कल्पवृक्ष सी शीतलता का अहसास करेगा। भीतर के पैमाने को छूते ही अहंता और ममता जल जाती है और उस आग की रोशनी में आप अपने आत्मस्वरूप को स्पष्ट देख पाओगे। भीतर के पैमाने का कोई पैमाना नहीं है वह अपार है फिर भी सूक्ष्म है।

प्यारे साधको!

ध्यानावस्था में तीव्र धारणा के द्वारा आप स्वयं को अनुभव करा देंगे कि आत्मा, "तत्व रूप" है। वह अंतराकाश आकृतिरहित, निरावरण और उसके विशिष्ट स्वभाव में राचने वाला है फिर भी प्रकृति का सहायक है। तब आपका शुद्ध स्वरूप सदा ही चित्त में स्थिर रहेगा। आप कर्ता होने पर भी अकर्ता, भोक्ता होने पर भी अभोक्ता भाव में सदा मुक्त अवस्था में प्रसन्न रहेंगे।

तो दोस्तो! अब उतरो ध्यान में और जैसे मैंने विधि को बताने की कोशिश की ऐसा कुछ करना समग्रता से आरंभ कर दो। मेरा कुछ भी कहना तब तक गौण है जब तक आपके लिए ध्यान महत्वपूर्ण ना बन जाए।

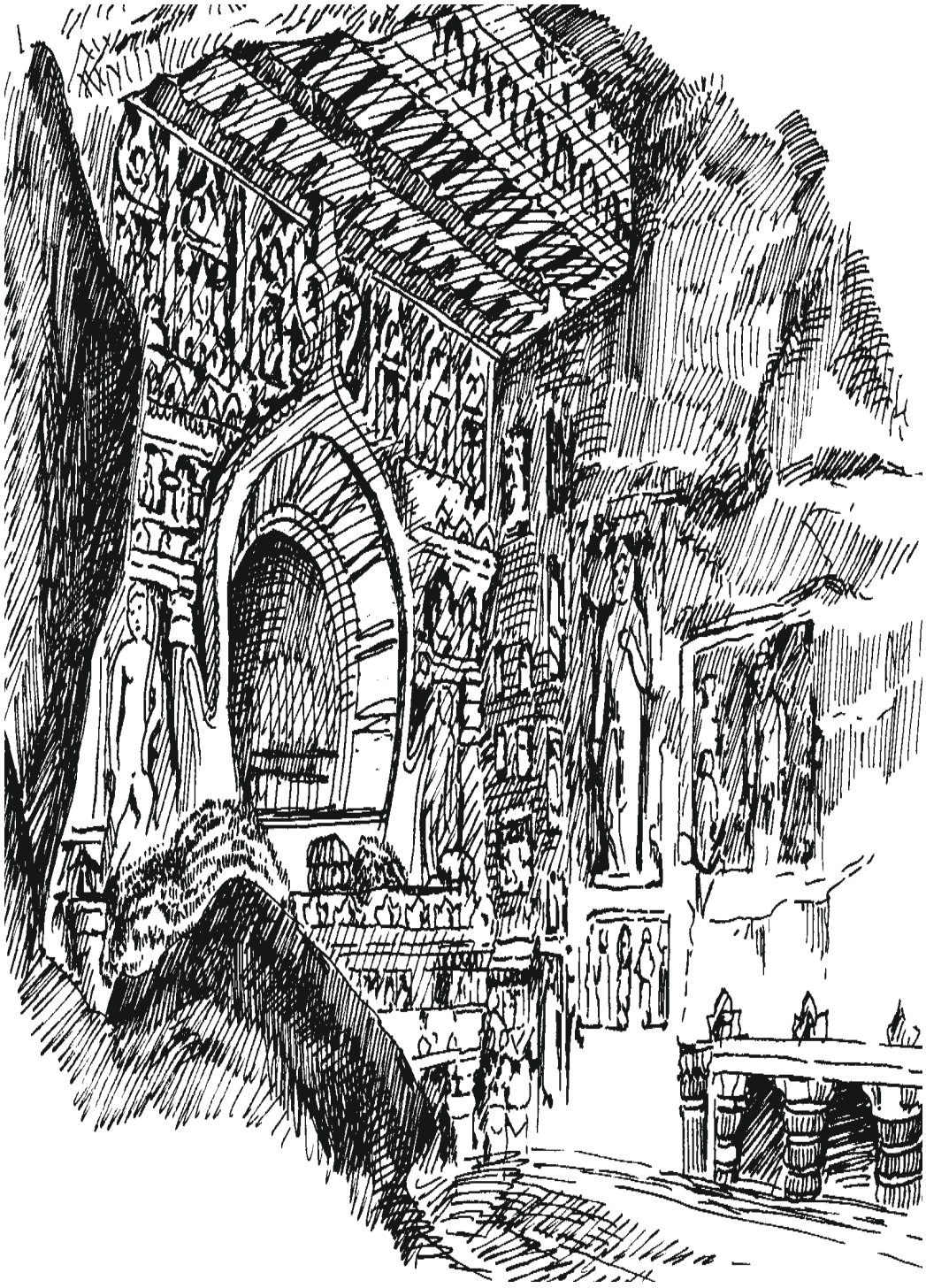

धारणा - 141

निजरूप परिचय भाव

ध्यान

ध्यान सूक्ति - 141

करहूं भाव में नहीं इच्छा हूँ, नहीं ज्ञान में नहीं देह हूँ।
तो क्या हूँ? निज चित्त में देखे, मूल स्त्रोत में तनमय लेखे।
इच्छा अथवा ज्ञान कछु उपजे, आत्म बुद्धिमय साधक खोजे।
यह सब आत्म रूप ही भाई, तब तत्वार्थ दर्शन तेहि होई।।

ध्यान विधि - 141

"मैं कौन हूँ ?" - इस प्रश्न के तत्वार्थ को ध्यान द्वारा जान लो और अपने मूल स्रोत को प्राप्त कर लो ।

मन में जो भी इच्छी और दुन्यवी ज्ञान हो, फिर भले वह किसी भी विषय का हो। परंतु वह सब बुद्धि की उपज है। आपको सोचना है कि बुद्धि के पार क्या है? गहराईयों में जाते-जाते परतें हटती जाएंगी और पता चलेगा कि सबके मूल में तो आत्मा है और सबकुछ आत्मरूप है। निरंतर आंतरिक खोज के परिणामरूप अचानक आत्मतत्व का बोध घट जाएगा। आत्मस्वरूप की अनुभूति हो जाएगी। आपको तत्व का अनुभव हो जाने से सही अर्थ में आप तत्वार्थ को समझ पाएंगे।

प्रिय साधको!

आगे की ध्यान विधि की श्रंखला में ही यह ध्यान विधि है। कभी कभी आपको लगेगा कि एक जैसी ही बातें हो रही हैं। आप सही हैं फिर भी सही नहीं। क्योंकि ऐसा करना शास्ताओं को जरूरी लगा होगा। आदमी भुलक्कड़ है, उसे बार-बार सत्य का स्मरण कराना पड़ता है।

"तीन बार खाना और एक बार नहाना।" शिव के नंदी से यह भूल हो गई थी, यह कहानी याद है ना! फिर तो आदमी ने जान लिया कि नंदी की भूल थी परंतु आज तक आदमी शिव की बात का अनुसरण नहीं कर रहा है। सत्य को जानने के बाद भी नंदी की बात का ही अनुशरण करना, यह कैसी विचित्रता!

दोस्तो! पशुता का अनुशरण करना आसान है; ज्ञान का अनुशरण करना कठिन। यह कहानी गूढ़ अर्थ से भरी है। परंतु लोगों ने उसे लौकिक बना दिया। मैंने एक भजन में कहा है –

साधक गूढ़वाणी को जान
जनम गूढ़ है, मरण गूढ़ है

गूढ़ जीवन पहचान
साधक गूढ़वाणी को जान।

गूढ़ ज्ञान गूढ़ ईश्वर साधक
दोनों एक समान
साधक गूढ़वाणी को जान।

गूढ़ जगत है गूढ़ ब्रह्म है
गूढ़ गति को मान
साधक गूढ़वाणी को जान।

गूढ़ गुरुगम महिमा समझी
"मोहिनी" धर ले ध्यान
साधक गूढ़वाणी को जान।

गूढ़ को सरल बनाना, सरल बताना, सुन्दर ढंग से बताना। सत्संग के द्वारा समझने में आसान बनाना यह एक बात है परंतु अर्थ का अनर्थ कर देना यह एक आध्यात्मिक अपराध है। परंतु भीड़ में किए हुए अपराध का इल्जाम किसी एक के माथे पर नहीं होता।

आज के लोग धर्म और आध्यात्म के क्षेत्र में ऐसा ही करते रहे हैं। वह अज्ञान के कारण नहीं हो रहा है। ज्ञान से दूर रहने के इरादे से हो रहा है, चालाकी से हो रहा है। सत्य को जानने पर भी उसपर आवरण डालते रहना, यह पाप है। कुत्सित और दूषित मन ही नर्क है। स्पष्ट और सही समझ स्वर्ग का द्वार खोल देती हैं।

शिव ने नंदी से कहा था कि मनुष्यता को जाकर बता दे कि तीन बार नहाना और एक बार खाना यह शिव का संदेश है। परंतु बैल ने उल्टा कर दिया। वह बेचारा भूल गया। शिव ज्ञान का प्रतीक है बैल पशुता का।

खाना भूख का प्रतीक है नहाना शुद्धिकरण का। नहाने का अर्थ यह नहीं है कि दिन में तीन बार बाथरूम में जाकर पानी से नहाओ। यहाँ नहाने का अर्थ है आंतरिक शुद्धिकरण अर्थात भीतर का स्नान।

प्यारे दोस्तो!

आंतरिक शुद्धिकरण का श्रेष्ठ माध्यम है, ध्यान। ध्यान के प्रवाह में सारी अशुद्धियाँ धुल जाती हैं।

मैं तो कहती हूँ कि आदमी ने तीन बार खाने की जगह तीन बार स्थूल स्नान को पकड़ लिया होता तो भी शिव के संदेश का तो अनर्थ हो जाता। ऐसा अर्थ कुछ खास संप्रदाय के रूढिवादी लोग आज भी कर रहे हैं। दोस्तो, जल स्नान से मेरा कोई विरोध नहीं है। उससे काफी फायदे हैं। परंतु मैं कहूंगी कि पृथ्वी का हर आदमी अगर तीन बार नहाने लगेगा तो पानी का इतना व्यय होगा कि गरीब के लिए पीने का पानी भी दुर्लभ हो जाएगा।

लोगों ने आकाश और धरती को तो बांटा परंतु अब कहीं ऐसा न हो कि धनवान लोग नदियाँ भी खरीद लें।

यहाँ स्नान का अर्थ इतना ही है कि भीतर से शुद्ध रहो।

प्यारे साधको!

हम बात कर रहे थे कि ध्यान की काफी विधियाँ एक दूसरे से बहुत निकट हैं। फिर भी धारणा में फर्क है। शास्ताओं को जरूरी लगा तो निकट-निकट की विधियाँ दे दीं। हमारे मनीषियों ने मनुष्य को जगाने के लिए एक सी दिखती हुई विधियों को भिन्न-भिन्न रूप में अनेक बार बताया, क्यों?

क्योंकि एक नहीं तो दूसरे तरीके से, परंतु मनुष्य सत्य में प्रवेश कर ले, ध्यान को उपलब्ध हो जा। निज रूप का परिचय प्राप्त कर ले। आदमी दुनिया के बारे में जानकारी इकट्ठी कर लेता है। परंतु निजरूप से आजीवन अपरिचित सा रह जाता है।

एक बार एक साधक गुरू के पास दीक्षा लेने आया। गुरू ने कहा कि पहले मुझे तेरी पात्रता की परीक्षा करनी होगी। तुझे अगर मेरा शिष्य बनना है तो इस आश्रम के कमरे में जब तक मैं ना न कहूँ तब तक दिन में तीन बार झाड़ू लगाएगा। साधक सच्चा ज्ञानपिपासु और प्रमाणिक था। वह आदेश का अनुशरण करने के लिए प्रतिबद्ध हो गया। तीन साल तक एक ही काम, एक कमरे में दिन में तीन बार झाड़ू लगाना और कमरे की सारी चीजों को साफसुथरा रखना। कोई साधारण आदमी होता तो भाग जाता। क्योंकि धर्म के साथ तो पूजा, पाठ, माला, मंत्र, मंदिर क्या-क्या नहीं जुड़ गया है! परंतु सच्ची समझ के साथ इन सारी बातों का कुछ लेना देना नहीं। गुरू के आश्रम में तो ऐसा कुछ भी नहीं था। एक ही कमरा दिन में तीन बार साफ करना, यह कैसी साधना? गुरू बराबर निरीक्षण कर रहे थे। साधक समझ गया था कि गुरू साधारण नहीं हैं। बात कुछ गूढ है, परंतु मुझे न हटना है, न हारना है।

तीन वर्ष के बाद गुरू ने शिष्य के सर पर हाथ रखकर कहा कि बेटा आज तेरी दीक्षा हो गई। तब शिष्य ने पूछा कि प्रभु मुझे आपने यह सेवा ही क्यों सौंप रखी थी। गुरू ने प्रतिप्रश्न किया कि तू कितनी बार झाड़ू लगाता था। शिष्य ने कहा कि तीन बार। गुरू ने पूछा कि कचरा निकलता था। शिष्य ने , हाँ कहा। तीनों बार की साफसफाई में थोड़ी बहुत रज तो अवश्य निकलती थी। गुरू ने कहा कि बेटा जिस तरह साफ-सुथरे

कमरे में भी हर पल थोड़ी बहुत रज जम जाती है इसी तरह शुद्ध चित्त पर भी प्रतिपल विचारों की थोड़ी बहुत रज तो चिपकती ही रहती है। उसकी सफाई के लिए ध्यान अनिवार्य है। बेटा, कमरे के दर्पण को अगर तू साफ नहीं रखता तो तेरी ही छबि तुझे ठीक से नहीं दिखाई देती। वैसे ही चित्त रूपी दर्पण पर चिपकी हुई अशुद्धियाँ ध्यान के द्वारा अगर बार-बार साफ नहीं होगी तो मनुष्य अपने स्वरूप को शुद्ध रूप में नहीं देख पाएगा और भ्रमित हो जाएगा।

दोस्तो! शायद इसी वजह से आत्मरूप में स्थिर होने के लिए और चित्त शुद्धि के लिए शिव ने तीन बार स्नान की बात की थी और हमारे ऋषि मुनि, ज्ञानी, ध्यानी और योगी पुरुषों ने ध्यान की अनेक विधियाँ बताई हैं।

दोस्तो! आदमी दुनियां के साथ जान-पहचान बढ़ाने में बहुत उत्सुक है। मेरी ध्यान शिबिर में भी कुछ लोग ऐसे आ जाते हैं कि बिना मांगे सब लोगों से अपनी पहचान बढ़ाने के लिए अपना विज़िटिंग कार्ड सभी के हाथ में थमा देते हैं। ये बहुत बेतुकी हरकत है। कम से कम ध्यान में आओ तब तो दुनियां-धंधा छोड़ो। खैर! आखिर आदमी ऐसा क्यों करता है? इसका एक ही जवाब है इच्छाए, लालसाएं और एषणाएं। मैं कहती हूँ -

ज़माने में जो आगे है वो उस दुनिया में है पीछे
समझ लो मामला तो तुम मुकद्दर के सिकंदर हो

परंतु ऐसा शाहीपना बहुत कम लोगों के नसीब में होता है। आज की मार्केटिंग की दुनियाँ में सेठ भी भिखारी बनकर बैठा है। उसका भीख

मांगने का तरीका अलग है। वैसे तो आकर्षक विज्ञापनों के नाम से लूट युक्त भीख ही है। खैर छोड़ो!

अब आईए ध्यान विधि की ओर। ध्यान विधि कहती है कि आपको ऐसी धारणा करनी है कि मैं इच्छा नहीं हूँ, ज्ञान नहीं हूँ, शरीर नहीं हूँ। तो क्या हूँ? ध्यान में बैठकर देखते जाओ। स्वयं के चित्त में ही सत्य प्रतिबिम्बित हो जाएगा। बस यही शुद्धिकरण के पल हैं।

प्यारे साधको!

मन में जो भी इच्छी और दुन्यवी ज्ञान हो, फिर भले वह किसी भी विषय का हो। परंतु वह सब बुद्धि की उपज है। आपको सोचना है कि बुद्धि के पार क्या है? गहराईयों में जाते-जाते परतें हटती जाएंगी और पता चलेगा कि सबके मूल में तो आत्मा है और सबकुछ आत्मरूप है। निरंतर आंतरिक खोज के परिणामरूप अचानक आत्मतत्व का बोध घट जाएगा। आत्मस्वरूप की अनुभूति हो जाएगी। आपको तत्व का अनुभव हो जाने से सही अर्थ में आप तत्वार्थ को समझ पाएंगे।

दोस्तो! तत्वार्थ का अर्थ यह नहीं समझ लेना कि आप तत्वदर्शन के शास्त्रों को पढ़ लो और समझने की उधेड़बुन में पड़ जाओ क्योंकि सत्य की आंख नहीं खुलेगी तो नासमझी में पढ़े हुए सारे शास्त्र बेचारे बन जाएंगे।

दोस्तो! विधि इतना ही समझान चाहती है कि इच्छा, क्रिया, बौद्धिक ज्ञान आदि पर सूक्ष्म चिंतन करने से भीतर से ही जवाब मिल जाएगा कि उन सबका परम स्त्रोत तो आत्मा ही है। ऐसा जानने के बाद ही उस परम तत्वरूप परमात्मा में आपका ध्यान स्थिर होगा।

पहले धारणा फिर ध्यान। तो अब उतरो ध्यान में और इच्छाएं, बुद्धि और अहंकार आदि के भार से मुक्त हो जाओ। ध्यान से आपके भीतर के विश्व में अचानक प्रकाश ही प्रकाश हो जाएगा। वह उजाला आपको बाहर के विश्व में भी मदद करेगा। जरूरी इतना है कि आप सही दृष्टि प्राप्त करना चाहो अर्थात आप ध्यान में उतरना चाहो।

अंधे की दुनियाँ अंधी है पर क्या ये सच होता है?
आंखें पाकर वही आदमी निज मूढ़ता पर रोता है।

सूख जात हैं बूंद झरने, दरिया कभी न सूखता है।
साधो! तुम सागर स्वरूप सागर की लहर क्या सूखती है?

दोस्तो, अंत में इतना ही कहूंगी कि ध्यान आपका अंधत्व दूर करेगा।

धारणा - 142

स्वजन दर्शन भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 142

सहसा दर्शन स्वजन का होई, त्वरित भाव को जानो सोई।
अंतर्मुखी अवस्था पाओ, अति रोमांच में शिव रूप ध्याओ।।

ध्यान विधि - 142

अचानक किसी स्वजन को देखकर जो रोमांच दशा प्राप्त होती है उसमें प्रवेश करके निजरूप को जान लो।

आपके जीवन में जब लंबे अरसे पर आपके प्रिय स्वजन फिर चाहे वह मित्र, बंधु, माता, पिता, पुत्र, भगिनी कोई भी हो परंतु वास्तव में आप जिसे चाहते हैं और जो आपको चाहते हैं, ऐसे स्वजन के मिलन की क्षण मौन, अश्रु और रोमांचित भाव दशा उत्पन्न हो रही है तो उसमें बने रहो, उससे बाहर आने की जल्दी मत करो। सही प्रेमी आपको उस दशा से बाहर लाने की कोशिश भी नहीं करेगा। अगर वह सचमुच आपके लिए आया है और आपको सही में पहचानता है तो वह समझ जाएगा आपकी अवस्था को। वह आपको समय देगा।

प्रिय साधको!

जब भी आप किसी भी प्रकार की भाव दशा में चले जाते हो, तब उस दशा के दौरान मन अदृश्य हो जाता है। इसी क्षण में मनुष्य अगर उस दशा को समझने में सक्षम न हो, तो कुछ बहुमूल्य को चूक जाता है। कैसे? ज़रा समझो।

अ–मन की अवस्था कभी अपने आप उत्पन्न नहीं होती। उस अवस्था में जाने के लिए ध्यान – धारणा का आधार लेना पड़ता है। परंतु कभी–कभी जीवन में ऐसी घटनाएं घट जाती हैं कि मन आकस्मिक रूप से अ–मन हो जाता है। कुछ क्षणों के लिए खो जाता है। मनुष्य उस क्षण का अपने आध्यात्मिक विकास में लाभ लेना चूक जाता है। ऐसे क्षण कभी–कभी दुनियावी घटनाओं से भी उत्पन्न होते हैं। परंतु गलती वहाँ होती है कि आदमी उन क्षणों को पहचान नहीं पाता। और दुन्यवी बातों में बहकर कुछ अमूल्य खो देता है।

दोस्तो! कुछ खास पलों को गंवाना या पकड़ लेना आपके हाथ में है। लोग कहते हैं, समय किसी की पकड़ में नहीं आता। मैं कहती हूँ, ध्यान

में आप खो जाते हो और सिर्फ परमात्मा की मौजूदगी रहती है। वहाँ समय का बोध मिट जाता है। वहाँ समय छोटा पड़ जाता है और ध्यान बड़ा।

आपने सुना होगा कि अमुक ऋषि सौ साल तक ध्यान में बैठे थे, तो कुछ पांच सौ, कुछ हजार, दो हजार वैसे पांच हजार साल तक की कथाएं सुनी होंगी। दोस्तो, यह वास्तविकता है कोई कल्पना नहीं। हाँ, बात इतनी पुरानी हो गई कि अतीत अतीत रह गया।

मैं कहती हूँ कि अतीत केवल याद करने के लिए नहीं है, कुछ सीखने के लिए है, कुछ प्रेरणा लेने के लिए है। मैंने देखा है कि मन इतना चंचल है कि उसे प्रतिपल कुछ नया–नया चाहिए। वह विचारों की भरमार को इस तरह फैलाता है कि उसमें शरीर और इन्द्रियाँ भी व्यस्त रहती हैं। मन आपसे कुछ न कुछ करवाता रहता है। आदमी इतना अभान है कि उसे पता तक नहीं चलता कि यह शरीर इतना चंचल क्यों है? मुझसे निरर्थक हलचल और प्रवृत्तियाँ क्यो हो रही हैं? बस, वह करता रहता है। जिंदगी भर करता रहता है।

उसी आदमी को ध्यान में बिठाओ तो शुरुआत में थोड़ा अस्वस्थ जरूर होगा क्योंकि स्थिरता का अभ्यास नहीं है। तो बार बार आंख खोल देगा, हिलेगा–डुलेगा, सर खुजला लेगा, क्योंकि उसे शांत रहने का अभ्यास ही नहीं है।

दोस्तो! पांच मिनिट में पचास टी.वी. चैनलों को बदलने का अभ्यास है। पाँच मिनिट में पचास योजनाएं बना लेने का अभ्यास है। पांच मिनिट में वह पांचसो विचार कर सकता है। परंतु स्थिर बैठना और ध्यान में उतरना उसे सबसे बड़ी सजा लगती है। परंतु जब धीरे धीरे

ध्यान से अभ्यस्थ हो जाता है तब मिनिट तो क्या पूरा घंटा कहाँ बीत गया उसका पता नहीं चलता।

ध्यान में मन इतना शांत हो जाता है कि उसका शरीर भले बाहर के विश्व में हो परंतु चेतना इतनी अंतरमुख हो जाती है कि वह बाहरी विश्व में आना नहीं चाहती। जिम्मेदारियाँ निभाने के लिए अथवा दायित्व पूरा करने के लिए उसे संसार में प्रवृत्त होना पड़े यह बात अलग है। परंतु फिर एक अवस्था ऐसी आ जाती है कि वह भले संसार की प्रवृत्तियाँ करे परंतु संसार उसके भीतर प्रवृत्त नहीं हो सकता। यही ध्यान की सार्थकता है, सफलता है।

दोस्तो! इस मकाम तक ही साधना की आवश्यकता है, फिर साधना करनी नहीं पड़ेगी। फिर तो वह सहज होती रहेगी। फिर तो आप जो कुछ भी करेंगे वह साधना के प्रभाव में ही होगा। आपका प्रत्येक कर्म साधना बन जाएगा।

खैर! मैं बात यह कह रही थी कि दो प्रकार से अ–मनी अवस्था का अनुभव होता है। एक तो ध्यान के लंबे अभ्यास से और दूसरा कोई अचानक घटती घटना से।

मैं कहती हूँ कि जीवन में कभी कभी अचानक घटती हुई ऐसी छोटी–छोटी घटनाएं जहाँ क्षण भर के लिए मन अ–मन हो जाता है, खो जाता है और विचार शून्यता छा जाती है। उस क्षण में अगर सजगता से प्रवेश करना सीख लिया तो ऐसी घटनाएं तो जिंदगी में असंख्य बार घटती हैं। ऐसी छोटी–छोटी क्षणों में अगर सभानता बनी रही तो आप बड़ी सफलता को, शांति को, सिद्धि को उपलब्ध हो जाओगे। यहाँ सिद्धि का अर्थ चमत्कारों से मत जोड़ना।

एक छोटी सी सांसारिक घटना से मन अ–मन हो जाता है। उस क्षण में आप प्रवेश करके, उसे लंबा करके उसे ध्यान की क्षण बना पाओ तो वह आज के युग में सबसे बड़ी सिद्धि है। जिन सिद्धियों को दुनियाँ देखती है और प्रभावित हो जाती है, वे तो चमत्कार हैं। वे सब ऊपरी स्तर की बातें हैं। जिस सिद्धि को साधक पचा लेता है और निजानंद में तरबतर हो जाता है वह एक वास्तविक सिद्धि है। जिसे मैं आध्यात्मिक सफलता कहती हूँ।

दोस्तो! ऐसा चमत्कार बाहर नहीं परंतु साधक के भीतर घटित होता है। जो कभी न है बाधारूप बनता है और न पतन का कारण। वह कभी खुद को या कभी दूसरों को धोखा नहीं देता। उस आंतरिक सिद्धि का केवल दर्शन होता है। उसे प्रदर्शन बनाने का कोई उपाय नहीं है।

प्यारे साधको!

इस ग्रंथ में कुछ ऐसी विधियाँ बताई गई हैं कि जहाँ ध्यान और निरंतर साधना केन्द्र में नहीं हैं। परंतु केन्द्र में ऐसी भावपूर्ण छोटी छोटी घटनाएं हैं जहाँ मन कुछ देर के लिए अदृश्य हो जाता है। बुद्धि शांति में प्रवेश करती है, चित्त में निर्विचार अवस्था छा जाती है। परंतु आपको उस पल का लाभ उठाना सीख लेना है।

अब हम जा रहे हैं विधि की ओर। विधि का नाम है स्वजन दर्शन ध्यान।

विधि कहती है कि लंबे अरसे पर कोई स्वजन या प्रियजन जो अंतर से अपना लगता है, आपके दिल ने जिसे अपना मान लिया है, ऐसे किसी स्वजन का मिलन होता है तब क्या होता है? इस घटना का कम से कम एकाद अनुभव तो सबके पास होगा। सूक्ति कहती है कि

सहसा दर्शन स्वजन का होई, त्वरित भाव को जानो सोई।

भाव रोमांच दशा में क्षण भर के लिए मनुष्य के सारे अहंकार गिर जाते हैं, सब मुखौटे उतर जाते ह। बुद्धि तर्क वितर्कों के पार चली जाती है। ऐसे क्षणों में मनुष्य अपनी वास्तविकता में आ जाता है।

दोस्तो! ध्यान आखिर क्या करता है? वह आपको अपनी वास्तविकता में लाता है। इसलिए तो आपको ध्यान में आनंद आता है, शांति मिलती है। मनुष्य का वास्तविक स्वरूप क्या है? वह है प्रेम, आनंद, शांति, भाव, सत्य . . . ।

भाव रोमांच दशा की क्षण सच्ची होती हैं क्योंकि वहाँ बुद्धि अपने करतब नहीं बताती। मन हक्का-बक्का हो जाने से कुछ ज्यादा सोचता नहीं। मन और बुद्धि की देहरी को पार कर जाने से मनुष्य का अहंकार गिर पड़ता है।

दोस्तो! अहंकार का स्मरण कौन रखता है, पता है? बुद्धि। बुद्धि मनुष्य को एक खास परिधि में बांध देती है। मनुष्य के अहंकार को स्मरण कराती है कि तुझे ऐसा ही करना है और ऐसा नहीं करना है। शरीर के हाव-भाव के द्वारा वह अहंकार प्रगट होता रहता है। परंतु जब भाव जगत के कारण मन और बुद्धि दोनों क्षीण हो जाते हैं तब अहंकार खो जाता है और मनुष्य प्रेम की अवस्था में होता है। ऐसी क्षणों में बुद्धि और अहंकार रोक-टोक नहीं करते। जिससे आदमी रो सकता है, किसीको गले लगा सकता है, खुलकर हंस सकता है, प्यार से हाथ मिला सकता है, और खुद के स्टेटस को भूल सकता है।

इस अवस्था के सिवाय प्रेम या मैत्री में रोना और मुखौटे को गिरा देना इतना आसान नहीं। परंतु भाव की पराकाष्ठा में प्रेम और रोमांच

दशा बुद्धि, मन और अहंकार पर हावी होकर मनुष्य के वास्तविक चहरे को प्रगट होने का मौका देता है। वाणी क्षण भर के लिए विदा ले लेती है। बोलें तो भी क्या बोलें? बोलने की जगह ही नहीं बचती। कभी-कभी बोलना पड़ता है। परंतु वह केवल एक औपचारिक शिष्टाचार बनकर विक्षेप खड़ा करता है। बरसों के बाद मिले हुए स्वजन को देखकर वाणी बौखला जाती है। क्योंकि भाव इतने प्रबल होते हैं कि उन्हें अभिव्यक्त करने के लिए वाणी असमर्थ हो जाती है। इसलिए शब्दों के लिए कोई जगह नहीं बचती।

भाव रोमांच दशा में अगर कोई बोले तो लगता है कि शब्द विक्षेप कर रहे हैं। शब्दों को बोलना मूढ़ता सा प्रतीत होता है। भाव विभोर दशा में कंठ इतना भर आता है कि शब्द बाहर ही नहीं आ सकते। भाषा अस्पष्ट हो जाती है। भाव प्रवाह इतना प्रबल होता है कि ऊपरी बातों को बहा ले जाता है।

दोस्तो! ऐसी भाव दशा में शरीर पागल सा व्यवहार करता है। वह करना कुछ चाहता है और हो जाता है कुछ और। वह ओढना कुछ चाहता है और कुछ और ही हाथ में आता है। बाकी वस्त्र पहनना एक रोज़िंदा क्रिया है। इसमें चाहने पर भी गड़बड़ नहीं हो सकती परंतु शरीर जब रोमांच दशा में व मस्ती अथवा आनंद में होता है तब दुनियांदारी चीजों के प्रति अभान सा हो जाता है। चीज़ें नज़रों के सामने होने पर भी हाथ नहीं लगती। एक प्रकार की विह्वलता का अनुभव होता है।

भाव दशा में क्या करे? क्या न करें? कुछ समझ में नहीं आता। दोस्तो! ऐसा क्यों होता है? क्योंकि बुद्ध रुक गई है। शरीर तो बेचारा उपकरण है। बिजली चली जाएगी तो स्विच ऑन करने पर भी बल्ब नहीं

जलेगा। ऐसे ही मन और मति भाव दशा में जब विदा ले लेते हैं तब सुध-बुध नहीं रहती। आनंद के अतिरेक में मन की सत्ता खो जाती है। आंख में से आंसू बह जाते हैं। दिल बिलकुल हल्का हो जाता है। फिर भी संभव है कि धड़कनों की गति बढ़ जाए क्योंकि कुछ क्षणों ने पूरे शरीर के रसायणों को बदल दिया।

स्वजन का स्वागत करना या उसके साथ बैठना या हाथ पकड़कर बैठे रहना यह मेरी दृष्टि से कोई पूजा प्रार्थना से कम नहीं है। परंतु दोस्तो, यह आनंद अति पावन और विशुद्ध होता है। वहाँ निर्मलता और निखालसता का दर्शन होता है। सबकुछ सहज और स्वाभाविक होता है। ऐसे क्षण में आँखों से बहतु आँसु सांसारिक आंसु नहीं होते। वह तो एक ऐसा क्षण है कि जहाँ किसी भी प्रकार की बनावट और मिलावट की संभावना ही नहीं होती। जो कुछ भी होता है सब स्वयंभू घटता है।

प्यारे साधको!

ऐसी अवस्था के लिए कोई योजनाएं नहीं बनाई जा सकतीं। अगर ऐसा मिलन योजनाबद्ध होता है तो भी आनंद के अतिरेक में सब मटियामेट हो जाता है। आप चाहते हैं किसी और प्रकार से स्वागत करना और कुछ और ही कर बैठते हैं क्योंकि यहाँ कुछ भी मन और बुद्धि के मार्ग दर्शन में नहीं हो रहा है। जो कुछ भी है कुदरती है। स्वजन के स्वागत के लिए फूल रखे थे परंतु उसके आगमन से अश्रु निकल आए। भाव-विभोरता बढ़ गई, हाथों ने हाथों को थाम लिया तो देर तक थाम कर ही बैठे रहे। सबकुछ भूल गए, फूल पड़े रहे और आंसुओं का अभिषेक होने लगा। बस! स्वागत हो गया। पुष्पों से लाखों गुना मूल्यवान है यह स्वागत।

मैंने सुना है, कि कृष्ण के सानिध्य के लिए और बांसुरी की धुन में समाधिस्थ होने में उत्सुक गोपियों की हालत कुछ ऐसी ही हो जाती थी। भक्त नरसिंह महेता ने तो अपने भजन में वहाँ तक कहा है कि वे जल्दी जल्दी में बछड़े की जगह बच्चे को बांध देती थीं, दूध उफन जाता था, काजल को गाल पर लगा लेती थीं, और कपड़े उल्टे सीधे पहन लेती थीं। मैंने एक घनाक्षरी कवित्त में लिखा है –

तन में किशन मेरे मन में किशन मेरे मन में किशन।
घर घर में किशन वृंज बन में किशन है।।
माखन किशन मेरी मटुकी किशन।
बंसी-वट में किशन पनघट में किशन है।।
असुवन किशन मेरी आंखियां किशन।
मेरा आदि किशन और अंत भी किशन है।
"मोहिनी" किशनलाल बस्यो रोम रोम मेरे।
कहा जाऊ उधौ व्रज धन ही किशन है।

मैंने पुराण की एक कथा सुनी है, बड़ी प्यारी कथा है। कृष्ण जब भक्त विदुर के घर पहुंचे तो विदुर पत्नी सुलभा की ऐसी स्थिति हुई थी – कृष्ण को भूख लगी थी और सुलभा थी भाव समाधि में। परंतु अपने प्यारे अतिथि ने भोजन मांगा तो तुरंत कुछ तो देना पड़ेगा। सुलभा भावावेश में खड़ी हुई, कुटिया में फल रखे थे। सुलभा कृष्ण के लिए टोकरी में से केले उठा लाई और प्रभु को अपने हाथों से ही देने के भाव से केले के छिलके उतारने लगी और भावावेश में कृष्ण को केले की जगह केले के छिलके ही पकड़ाने लगी और केले फैंकती गई।

दोस्तो! लोग कहते हैं कि सुलभा संकुचित न हो जाए या उसकी भावसमाधि न टूटे इसलिए प्रभु छिलके खाते रहे। परंतु मैं कहती हूँ कि ऐसा नहीं था। वास्तव में द्वारिकाधीश भी भावदशा में थे। क्या सुलभा ही भावदशा में जा सकती है, कृष्ण नहीं?

दोस्तो! कृष्ण तो योग-प्रिय, योगी-प्रिय और योगेश्वर हैं। योगी जल्दी भावदशा में पहुंच सकता है और वास्तव में भक्त और भगवान दोनों समान अवस्था में थे। तब तो परस्पर इतना प्रेम प्रवाह बह सकता है। बाकी तो संभव ही नहीं है। दो में से एक पर आवरण चढ़ा हुआ है तो दूसरे को मजबूरन दुनियादारी में आना पड़ता है।

दोस्तो! कभी कभी तो एक की भावदशा की पराकाष्ठा दूसरे को भी घेर लेती है। कृष्ण ने जानबूझकर छिलके नहीं खाए हैं परंतु वे भी भावदशा की परिसीमा में थे। उन दोनों के बीच में खाना खिलाना गौण था। केन्द्र में था भाव। कृष्ण केवल खा रहे हैं। क्या खा रहे हैं? यहाँ यह बात महत्वपूर्ण नहीं थी, परंतु सुलभा कितने भाव से खिला रही है, यह बात महत्वपूर्ण है।

दोस्तो! प्रेम के संदर्भ में मैंने एक भजन लिखा है-

प्रभु को प्रेम से पड़ गया पालो,
प्रेम के पाले पड़ कर प्रभु ने नियम पलट ही डालो
प्रेम के कारन नंद के आंगन ठुमक ठुमक प्रभु चाल्यो
प्रेम के बस व्रज की गलियन में गोविंद गेंद उछाल्यो
व्रज की रक्षा काज किशन ने गोवर्धन को उठा लो
प्रेम में पागल थै थै नाच्यो मोहन मुरली वालो
पांचाली अरु पार्थ रथ रण हंकार्यो शबद गीता के पाल्यो

ध्रुव प्रहलाद ने प्रेम कियो तब हाथ प्रभु ने जाल्यो
गज गणिका ने नाम पुकार्यो सुणतही श्याम संभाल्यो
प्रेम से इक भिलनी ने कथा था बैर प्रभु मेरे खालो
झूठे फल श्रीराम स्वीकार्यो भेदभाव सब टाल्यो
विदुर सुधन्वा संद विभीषन अंबरीष के दुःख टाल्यो
प्रेम दिवानी मीरा का विष सुधा करत नंद लालो
प्रेम रिजैया मक्खन चुरैया हरमो पाप चुरालो
"मोहिनी" माधव प्रेम मगन भई किरपा करी अपना लो।

प्यारे साधको!

ऐसे क्षण आपके जीवन में भी घटित होते हैं। हर इंसान का कोई न कोई स्वजन तो जरूर होता है और वह कभी न कभी तो उससे जरूर मिलता है। जब ऐसे क्षण प्राप्त हों तब उस क्षण से बाहर मत आओ। लोग भले पागल समझें, लोगों की चिंता छोड़ो।

आदमी कभी-कभी क्षण चूक जाता है और बेकार की बातों में ऐसी मूल्यवान पल गंवा देता है। आप ऐसा मत करना। तंत्र ने छोटी-छोटी घटनाओं का अभ्यास करके मनुष्य को ध्यानस्थ करने में उसका उपयोग कर लिया है।

आपके जीवन में जब लंबे अरसे पर आपके प्रिय स्वजन – फिर चाहे वह मित्र, बंधु, माता, पिता, पुत्र, भगिनी कोई भी हो परंतु वास्तव में आप जिसे चाहते हैं और जो आपको चाहते हैं, ऐसे स्वजन के मिलन की क्षण मौन, अश्रु और रोमांचित भाव दशा उत्पन्न हो रही है तो उसमें बने रहो, उससे बाहर आने की जल्दी मत करो। सही प्रेमी आपको उस दशा से बाहर लाने की कोशिश भी नहीं करेगा। अगर वह सचमुच आपके लिए

आया है और आपको सही में पहचानता है तो वह समझ जाएगा आपकी अवस्था को। वह आपको समय देगा।

आपकी ऐसी अवस्था ही उसका असली मजा है, असली आनंद है। खो जाओ उस भावदशा में, खोते रहो। उस क्षण को इतनी गहरी बनाओ की वह ध्यान बन जाए। मन और बुद्धि को वापस बुलाने की कोशिश मत करना। किसी को आपका यह बर्ताव इररेशनल (अबूध जैसा) लगे तो लगने दो। किसी भी मूल्य पर आप अपना ध्यान मत खोना। यह ध्यान आपके प्रेम और आनंद दोनों को बढ़ाएगा और आपको एक विशुद्ध अवस्था प्रदान करेगा।

धारणा - 143

शिशुहास्य दर्शन ध्यान

ध्यान सूक्ति - 143

सुंदर बालक किल किल हसहिं, ते निर्दोष भाव में बसहिं।
साधक हृदय त्वरित शुद्ध होई, तेहि क्षण वेद सत्य कहि गावहिं।।

ध्यान विधि - 143

शिशु के निर्दोष हास्य में प्रवेश करके ध्यान में उतरो और विशुद्ध भाव में प्रवेश कर लो।

कोई सुंदर बच्चा जब किलकिलाट हँस रहा हो तो उस हँसी को देखकर, उसको अपने निकट लेकर, उसके निर्मल हास्य को अपने ध्यान का आधार बना दो। उस निर्दोष भाव में प्रवेश कर जाओ। थोड़ी देर के लिए आपको, बच्चे को और आसपास की दुनियां को भूल जाओ तथा प्रवेश कर लो उस निर्दोष हास्य में, उस प्रसन्नता के भाव में।

आपने कभी सोचा है कि एक अबोध और पराधीन शिशु भी कितनी निर्दोषता से हँस सकता है। और आप! कितने प्रयत्न करने के बाद भी आपके लिए हँसना दुर्लभ है। अगर आप बच्चे के हास्य में प्रवेश करना सीख लेंगे तो आपकी निर्दोषता के आड़े जो आवरण हैं, वे स्वत: हटने लगेंगे।

प्यारे साधको!

अब हम जा रहे हैं शिशु हास्य दर्शन ध्यान की ओर। यह ध्यान किसी शास्त्र में खोजने मत बैठना। ग्रंथ शाश्वत नहीं है, ज्ञान शाश्वत है। ज्ञान का अनुभव शास्त्र का रूप लेता है तब वह शाश्वत से निकट हो जाता है। बाकी कागज़ों का कोई खास मूल्य नहीं। एक दूसरी बात, ज्ञान वाणी या उत्तम शास्त्र केवल समझदार लोगों के लिए शाश्वत हैं। रद्दी बेचने वाला तो ज्ञान का मूल्य पांच रूपये किलो करता है, जिस किलोग्राम में संभव है कि व्यास और वाल्मिकी जैसों का पूरा जीवन समर्पित हो गया।

दोस्तो! ये विधि मेरी अनुभूति में से पनपी है। यह एक सहज खोज है। इसे एक नारी हृदय की ज्ञानपूर्ण खोज मान लो। यह ध्यान विधि मातृत्व और वात्सल्य भाव से भरे हुए मनुष्य का अनुभव है। शिव हो या बुद्ध, सखुबाई हो या मल्लीबाई, बसरा की राबिया हो या काशमीर की लल्लीदेवी परंतु सभी सिद्धात्माओं के अनुभव में से ही शास्त्र उतरते हैं। ग्रंथ में से कोई महात्मा पैदा नहीं होते। महात्मा ग्रंथ को जन्म देते हैं। हाँ, ग्रंथ पढ़कर कोई रूपांतरित हो जाए यह बात अलग है।

प्यारे साधको!

अब आइए विधि की ओर। अगर आपके ध्यान में है तो इसके पहले के ध्यान में मैंने कहा था कि कभी कभी अचानक घटती छोटी–छोटी घटनाएं ध्यान का कारण बन सकती हैं।

आपने कभी छोटे से बच्चे को गोदी में लेकर खिलाया है। उसके साथ बच्चे बने हैं। दोस्तो! बच्चे के साथ बच्चे जैसा बनने के लिए बच्चे जैसा मन चाहिए। कुछ क्षणों के लिए भी आपका मन बच्चा नहीं बन सके तो आप बच्चों के साथ खेल नहीं सकते। बच्चे को बड़ा करना एक बात है और उसके साथ खेलना दूसरी बात।

बच्चे जैसा बनने का मतलब है कि आपका मन बिलकुल निर्मल हो जाए। दोस्तो! वैसे भी मन बूढ़ा है और आप छोटे। क्यों? क्योंकि आप एक एक क्षण, घंटे, दिन, महीने और साल होते होते बड़े होते हैं। परंतु मन क्षण भर में बहुत लंबी दौड़ लगा सकता है। जीव प्राणीमात्र में सबसे बूढ़ा और सबसे बड़ा मन मनुष्य के पास ही है। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है कि जन्म के बाद वह सबसे ज्यादा पराधीन रहता है।

दुनियां का कोई भी प्राणी अपने बच्चे को हाथ पकड़कर चलाना नहीं सिखाता। मनुष्य जन्म से पंगु है। वह बड़ा होने में सबसे ज्यादा समय लेता है। साथ साथ सब प्राणियों में समझदार भी है (अगर सचमुच समझदार हो तो)। खैर! मुझे बात शिशु हास्य दर्शन भाव की करनी है। परंतु विषय पर आने के लिए कुछ भूमिका अनिवार्य है।

दोस्तो! मन की दौड़ शरीर से लाखों गुनी है इसलिए वह बहुत जल्दी विकसित हो जाता है। मनुष्य पच्चीस साल का होता है तब तक तो मन सौ साल से भी बड़ा हो जाता है। ऐसी स्थिति में मन बड़प्पन की

धारणा पकड़कर अहंकार से भर जाता है। "मैं बड़ा हो गया" – यह धारणा उसे बच्चे के साथ बच्चा नहीं बनने देती। बड़ा हो जाने का भाव उसके मन का अहंकार प्रगट करता है। बच्चों का मन लगभग नहीं के बराबर होता है। आप देखना इसी कारण बच्चे ग्रंथिमुक्त, पूर्वग्रहमुक्त और ज्यादा खुश होते हैं।

कुछ लोगों के प्रति पूर्वग्रह से भरे हुए माता–पिता अपने बच्चों को उन लोगों से बात नहीं करने देते। उनके बच्चों के साथ खेलने नहीं देते। परंतु निर्दोष बच्चा माता–पिता के मना करने पर भी उन लोगों के पास जाता है। उनके बच्चों के साथ खेलता है। कभी–कभी तो लगता है कि बच्चे बड़ों से ज्यादा समझदार और प्रेमपूर्ण होते हैं।

बच्चों से कोई मारपीट भी कर लेता है तो भी कुछ देर के बाद वे खेलने लगते हैं और हंसने लगते हैं। वे झगड़े और फालतू बातों को लंबा करना नहीं जानते हैं। क्योंकि उनका अहंकार अभी पनपा नहीं है। मन विकसित नहीं हुआ। जब तक भीतर निर्मलता बची है तब तक मनोग्रंथियों को पालने का कोई उपाय नहीं है। जब तक मनोग्रंथियाँ नहीं हैं तब तक जिंदगी का मज़ा है। जहाँ मन में गांठें पड़ने लगती हैं, वहाँ प्रेम–प्रवाह अटकने लगता है।

खैर! मैं यह कहना चाहती हूँ कि आप भले बड़े हो परंतु मन को बुढ़ा मत बनने देना। बच्चे की तरह झगड़े की बातों को जल्दी भूल जाना। दोस्तो! यह भी एक कला है। एक आशीर्वाद है।

आप देखना, छोटा सा बच्चा जाने अन्जाने सबके सामने हंसता है। और बड़ा आदमी जहाँ मतलब हो या शिष्टाचार प्रगट करना हो वहाँ औपचारिकता से हंसता है। वह सबके साथ नहीं हंस सकता। अगर हंस

लेता तो कोई नुकसान नहीं हो जाता। परंतु उसके अहंकार को ठेस पहुंचने का डर है। उसके मन में जाति-पांति, ऊंच-नीच, छोटे-बड़े, गरीब-तवंगर, मान-अपमान जैसे अनेक प्रश्न खड़े होते हैं।

कुछ लोगों की हरेक प्रक्रिया बुद्धि की चेकपोस्ट से गुजरकर ही आगे बढ़ती है। मेरी दृष्टि से इसमें कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। यह तो मन के बूढ़े होकर अहंकार से निर्दोषता को कुचलने का प्रयास है। बड़ा आदमी सोचता है कि सामने से एक परिचित आदमी आ रहा है तो उसके साथ बोलूं या ना बोलूं, हँसुं या न हँसुं। अगर मैंन हँस दिया परंतु उसने हाकारात्मक प्रतिक्रिया नहीं बताई और मुझे छोटा और उसको कुछ खास मान लेगा तो। अगर चलो मैंने हँस भी दिया तो परंतु सामने वाला नहीं हँसेगा तो देखने वाले को कैसा लगेगा? ऐसे मनोमंथन में हँसने के क्षण निकल जाते हैं और काफी ऊर्जा खत्म होती है।

खैर! बच्चा मान, अपमान, मनोमंथन, मिथ्याभिमान आदि दूषणों से मुक्त होता है। वह तो अपनी मर्जी का मालिक है। इसलिए "बालाराजा" बोला जाता है। वह आपसे ज्यादा पराधीन फिर भी एक मनोस्वतंत्रता में जीता है। वह जब चाहे हंस लेता है, जब चाहे रो लेता है। झूठी दुनियादारी से उसको क्या? वह अहंकार की भाषा नहीं समझता। वह तो प्रेम की, चाहत की और वात्सल्य की भाषा जानता है।

दोस्तो! आप पर संस्कार के नाम से दुनियांभर की बातें ठोकपीट कर बिठाई गई हैं। बड़े होते होते आपकी असलियत खो जाती है। परंतु भोला भाला बचपन अपनी असलियत में जीता है। मैंने बचपन के संदर्भ में एक कविता लिखी है -

मैं रोता रोता आया हूँ
और हसता रोता जीता हूँ
बच्चे बूढ़े को भाता हूँ
मैं भोला भाला बचपन हूँ

मैं कहाँ से आया कहाँ मैं था मुझे कुछ भी सच्चा बोध नहीं
मद मोह नहीं मत्सर भी नहीं, नहीं लोभ काम की क्रोध नहीं
मुझे मान पान अपमान नहीं, दुनिया की झूठी शान नहीं
मासूम पाक बेदाग मैं हूँ, मैं भोला भाला बचपन हूँ

मैं बेशरम बिलकुल नहीं, मुझे कोई लाज कि शरम नहीं
मैं नंग धडंग ही फिरता हूँ पर कोई खोटा करम नहीं
मंदिर मस्जिद मैं क्या जानूं, मन में इश्वर का भरम नहीं
बस भूख सिवा कोई धरम नहीं, मैं भोला भाला बचपन हूँ

मैं स्वर्ग नर्कको ना जानू, मैं केवल दूध को पहचानुं
मम्मा अल्ला मम्मा ईश्वर बातें मम्मा की में मानूं
ये बाप बड़े और भाइ बहन मम्मा के कहने से मानूं
बेबूझ बड़ा निर्दोष मैं हूँ मैं भोलाभाला बचपन हूँ

छोटी सी मेरी है काया पर सबको मेरी है माया
सारी दुनिया को मैं भाया मुझे कौन यहाँ और क्यों लाया
मैं क्यों आया कैसे आया मुझे कोई न सच ये बतलाया
मैं दिग्मुढ़ दिगभ्रम लगता हूँ मैं भोलाभाला बचपन हूँ

अपनी मस्ती से हंसता हूँ ना कोई दिखावा करता हूँ
जो भूख लगे तो रोता हूँ हो मुश्किल तो चिल्लाता हूँ

रोने चिल्लाने की भाषा में मांग सभी में करता हूँ
मैं डरता हूँ घबराता हूँ मैं भोलाभाला बचपन हूँ

मैंने किसी से कुछ सीख लिया, किसीने मुझको कुछ सिखा दिया
रिश्ते-नाते भी बता दिया, चाचा-मामा सब पढ़ा दिया
धीरे धीरे सब मजा लिया, बक बकने मुझको फँसा लिया
तुतलाता हूँ कुछ गाता हूँमैं भोलाभाला बचपन हूँ

झूले में झुलता गाता हूँ माँ को पाकर मुस्काता हूँ
माँ दूर हटे तो रोता हूँ ले अपने पास तो सोता हूँ
माँ की गोदी का राजा हूँ और पल्लू में आ जाता हूँ
मैं लाड प्यार का भूखा हूँ मैं भोलाभाला बचपन हूँ

मैं चार पैर से चलने लगा उठकर चलने को मचलने लगा
बाबा गाड़ी मुझे छलने लगा मैं मन ही मन बहु फूलने लगा
कभी हाथ थाम कभी पैर थाम धीरे धीरे में चलने लगा
मैं डगमग चलता दर्पन हूँ मैं भोलाभाला बचपन हूँ

कभी गिरता हूँ कभी उठता हूँ जो देखले कोई तो रोता हूँ
मस्ती से कहीं भी सोता हूँ ऐसे में आगे बढ़ता हूँ
मिट्टी को प्यार से खाता हूँ जैसे कि बताशा खाता हूँ
मानो मिट्टी को अर्पण हूँ मैं भोलाभाला बचपन हूँ

दिन भर करता हूँ चटर पटर बर्तन ही खिलौने खटर पटर
छोटी आँखे है टगर टगर होता है कुतुहल डगर डगर
मुझको मेरी ना कोई खबर, थोड़ी भी मुझमें नहीं सबर
चंचल चकोर मैं क्षण क्षण हूँ मैं भोलाभाला बचपन हूँ

पत्तों के महल से खुश हूँ मैं घर रेती का आनंदित मैं
तैरूं कागज़की कश्ती में उडुं अंबर में मस्ती में
कीचड़ कंचन में भेद नहीं दिल में कोई भी खेद नहीं
मैं एक महेंकता मधुवन हूँ मैं भोलाभाला बचपन हूँ

मैया रानी जब गाती है तो मन को बड़ा लुभाती है
निंदिया रानी आ जाती है सुख के सपने संग लाती है
लोरी मुझको बहु भाती है ये सुनकर फुलती छाती है
मैं कहानीयों से राजी हूँ मैं भोलाभाला बचपन हूँ

करे प्यार जो उसपे मरता हूँ कोई डांटे तो मैं डरता हूँ
बेवजह में घूमता फिरता हूँ माँ बिन में आहें भरता हूँ
करो कुट्टी तो मैं बिलखता हूँ, हर चीज़ उठा के चखता हूँ
कोरा कागज़ जैसा मन हूँ मैं भोलाभाला बचपन हूँ

मुझे अनपढ़ ही रहने देना दुनिया की ना शिक्षा देना
मुझे प्यार की सब भिक्षा देना और सेवा की दिक्षा देना
मैं बेकसूर बेहोश रहूँ और ऐसा ही निर्दोष रहूँ
मैं इतनी विनती करता हूँ मैं भोलाभाला बचपन हूँ

नादानी मेरी अच्छी है ये लापरवाही सच्ची है
ये अक्ल 'मोहिनी' कच्ची है पर बुद्धि प्यारी बच्ची है
मुझ पे सब इतनी रहम करना हो सके तो एक करम करना
मुझको न कभी मरने देना मैं भोलाभाला बचपन हूँ

दोस्तो! इतनी भूमिका के बाद शायद आप इस ध्यान विधि को समझ पाएंगे। इस विधि में उतर पाएंगे। ध्यान सूक्ति कहती है कि

सुंदर बालक किल किल हसहिं, ते निर्दोष भाव में बसहिं।

कोई सुंदर बच्चा जब किलकिलाट हँस रहा हो तो उस हँसी को देखकर, उसको अपने निकट लेकर, उसके निर्मल हास्य को अपने ध्यान का आधार बना दो। उस निर्दोष भाव में प्रवेश कर जाओ। थोड़ी देर के लिए आपको, बच्चे को और आसपास की दुनियां को भूल जाओ तथा प्रवेश कर लो उस निर्दोष हास्य में, उस प्रसन्नता के भाव में।

आपने कभी सोचा है कि एक अबोध और पराधीन शिशु भी कितनी निर्दोषता से हँस सकता है। और आप! कितने प्रयत्न करने के बाद भी आपके लिए हँसना दुर्लभ है। अगर आप बच्चे के हास्य में प्रवेश करना सीख लेंगे तो आपकी निर्दोषता के आड़े जो आवरण हैं, वे स्वत: हटने लगेंगे।

उस हास्य की निर्मलता में आपका अहंकार धुल जाएगा। उस निर्दोषता का दर्शन करके आपका हृदय शुद्ध होने लगेगा। आपके साथ ऐसा कई बार हुआ है परंतु आप इस क्षण के प्रति सजग नहीं हैं।

मेरी यह ध्यान विधि आपको मात्र सजग करना चाहती है उस शुद्ध क्षण के प्रति, जिसे वेद सत्य कहते हैं।

मैं कहती हूं कि सत्य के साक्षात्कार का एक भी मौका मत गंवाओ। फिर वह हास्य में प्रवेश करने का मौका हो या वात्सल्य से तरबतर होने का। दोस्तो! उस क्षण में परमात्मा का साक्षात्कार है। खो जाओ हास्य में; थोड़ी देर शिशु के साथ शिशु बन जाओ और स्वयं पर चढ़ी हुई सारी अशुद्धियों को धुल जाने दो।

वात्सल्य भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 144

जब मातृत्व भाव से पुलकित, रोम रोम अरु हृदयालोकित।
साधक दिव्य लोक में वासा, अति आनन्दमय ज्ञान निवासा।।

ध्यान विधि - 144

हृदय जब वात्सल्य भाव से छलक रहा हो तब उस आनंद में प्रवेश करके ज्ञान को पा लो।

बच्चे के हास्य से आपके दिल में एक छोटी-सी बगिया खिल जाएगी। वातावरण में खुशबु फैल जाएगी। दोस्तो! जीव जब खुश होता है तब उसके शरीर के सारे कोष पुल्कित और प्रफुल्लित हो उठते हैं। मैं शरीर के प्रत्येक कोष को पुष्प कहती हूँ। बाहर के पुष्पों के खिलने से भीतर के पुष्पों का खिलना आज बहुत जरूरी हो गया है। जिसके भीतर का चमन खिला हुआ है ऐसा मनुष्य किसीकी बगिया नहीं उजाड़ सकता। और एक कांटा कई जिंदगियों को रक्तम करने के लिए काफी है।

प्यारे साधको!

यह विधि भी मेरे अनुभव में से निष्पन्न हुई है। इस विधि के लिए मेरे पास से कोई शास्त्रीय प्रमाण मत मांगना। मेरे अनुसार अनुभव से बड़ा प्रमाण कोई नहीं है। प्रत्येक शास्त्र मनुष्य के अनुभव में से उतरा है। शास्त्र के अनुसार मनुष्य नहीं। खैर! इतना हमेशा याद रखना। ताकि आप शास्त्र के अध्ययन भले करें परंतु नासमझों की भांति अंधाअनुकरण करने वाले न बनें।

हम जा रहे हैं वात्सल्य भाव ध्यान की ओर। अगले ध्यान की ही श्रृंखला में यह विधि आगे बढ़ रही है। मनुष्य बहुत संवेदनशील प्राणी है। परिस्थितियों और माहौल ने तथा तथाकथित शिक्षा और भ्रामक सुखों ने उसे स्वार्थ और अहंकार से भर दिया है ये बात अलग है परंतु मेरे अनुसार दुनियां में कोई मनुष्य ऐसा नहीं होगा कि जिसमें थोड़ा बहुत भी वात्सल्य भाव न हो। हरेक व्यक्ति थोड़े बहुत तो वात्सल्य पूर्ण तो होता ही है।

अपवाद रूप कोई ऐसा हो सकता है कि बचपन में जिसको लाड, प्यार या वात्सल्य नहीं मिला हो। वह व्यक्ति प्रेम विरोधी, वात्सल्यहीन

अथवा विद्रोही जैसा व्यवहार करे। परंतु यह अपवाद है। सामान्य रूप से तो पूरी मानव जाति के इतिहास को देखा जाए तो प्रत्येक जीव वात्सल्य से पूर्ण है।

ईश्वर ने मनुष्य के शरीर में सभी तंत्रों के साथ हृदय को जिस तरह से जोड़ा है वह अद्‌भुत है। हृदय बंद पड़ने के साथ सारे तंत्र स्थगित हो जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि हृदय सर्वोपरि है। यहाँ स्थूल के साथ हृदयस्थित ज्ञान, अज्ञान, प्रत्यक्ष, परोक्ष आदि भावनाओं की बात हो रही है।

हाँ, नारी में वात्सल्य का प्रमाण नर से सविशेष देखने को मिलता है। कुछ अपवादों को छोड़कर। क्योंकि वह भी एक कुदरत की व्यवस्था है। जिसे हमारे मनीषी, "ईश्वर की लीला" कहते हैं। अपने गर्भ में जीव का पालन फिर उसे जन्म देना और बाद में पोषण। यह सब क्षमताएं परमात्मा ने नारी को विशेष रूप से दी हैं।

पाँच साल की बच्ची में भी आपको वात्सल्य भाव सविशेष दिखाई देगा क्योंकि यह भाव उसकी रग-रग में कुदरत ने भरा है। अस्तित्व ने उसका सृजन ही इसलिए किया है। परंतु इसका अर्थ यह भी नहीं कि पुरुष में वात्सल्य नहीं होता। प्रमाण ज्यादा-कम हो सकता है। परंतु भावनाएं तो पुरुष में भी पड़ी हैं। मैं मेरी ही बात करूं तो मुझे मेरे पिता की ओर से माता से भी ज्यादा वात्सल्य प्राप्त हुआ है।

दोस्तो! वात्सल्य का संबंध शरीर संरचना के साथ जोड़ना कभी कभी झूठा साबित होता है। वात्सल्य तो हृदय का अमृत है। स्नेह का स्रोत है। स्नेह की धारा है। जीवन का संगीत है। बच्चे के बड़े होने में भोजन स्थूल रूप से आवश्यक है परंतु सूक्ष्म रूप से वात्सल्य ही उसका बल है।

उसका सही जीवन है। बच्चे का मनोविज्ञान वात्सल्य के प्रमाण के अनुसार विकसित होता है। मेरा अनुभव है कि वात्सल्य प्राप्त करना तो सौभाग्य है ही परंतु आप अगर किसी पर वात्सल्य बरसा पाओ तो वह भी एक आशीर्वाद है। एक दूसरी बात भी याद रखना, जरूरी नहीं है कि आप जिसपर वात्सल्य बरसा रहे हो, वे आपके पैदा किए हुए बच्चे हों। मेरी नज़रों से तो वात्सल्य स्वयं अद्‌भुत है और हर बच्चा अद्‌भुत, सुंदर और आकर्षक है।

मैं तो कहूंगी कि केवल मानव शिशु नहीं परंतु पशु–पंछी के बच्चे भी सुंदर लगते हैं। क्योंकि वे दुनियादारी की चालाकियों से अछूते होते हैं। इससे आगे कुछ कहूँ तो केवल बच्चों को नहीं, बड़ों को भी वात्सल्य की आवश्यकता है परंतु जैसे मैंने पहले कहा वैसे मनुष्य के द्वारा ओढा हुआ अहंकार उसके भीतर के बचपन को ढांक देता है, दबा देता है।

हरेक बड़े को बच्चा बनने का मन होता है। परंतु वह ऐसा नहीं कर पाता क्यों? क्योंकि वह डरता है, कि मुझे मंदबुद्धि तो नहीं मान लेंगे। दोस्तो! इस दंभ से भरी दुनियां में दंभ ही मनुष्य का जीवन मंत्र बनता जा रहा है। कोई बूढ़ा बच्चे के साथ गिल्ली–डंडा खेल रहा हो या कंचे खेल रहा हो तो लोग हंसेंगे। वह हसना गंदा है। कुछ हंसने जैसा है इसलिए वे लोग नहीं हंस रहे परंतु खुद इतने निर्दोष नहीं हैं। ऐसा आनंद नहीं ले सकते हैं। इसलिए दूसरे भी गलत हैं ऐसा साबित करने के लिए व्यंग्यात्मक हंसते हैं।

दोस्तो! सौ झूठों के बीच में एक सच भी झूठ साबित होता है। बहुमत बड़ा खतरनाक शब्द है। इस बहुमत ने पूरे समाज को राजनैतिक

बना दिया है, खोखला बना दिया है। बहुमत के कारण शायद सहजता और निर्दोषता खत्म हो रही है। खैर छोड़ो!

मैं यह कह रही थी कि बड़ों को भी वात्सल्य की जरूरत है परंतु वे अपने भावों को छिपाते हैं। वे इतने स्वार्थी हो गए हैं कि हर तरह से जब टूटने लगते हैं तब किसी बड़े का पल्लू आश्वासन पाने के लिये थाम लेते हैं। परंतु स्वार्थ सधते ही बूढ़ों का हाथ छोड़ देते हैं। यहाँ आशीर्वाद सब चाहते हैं परंतु सेवा करना कोई नहीं चाहता। परंतु बच्चा प्यार भी पाता है, प्यार देता भी है और दौड़-दौड़कर काम भी करता है।

दोस्तो! बच्चे की खुशी छोटी-छोटी होती हैं। बड़ो के पास से फ्लेट या गाड़ियां निकलवाने की वृत्ति से बच्चे पर होते हैं। उसकी खुशी जैम्स, चोक्लेट्स, आईसक्रीम या किसीकी भी गाड़ी में एक चक्कर लगा लेना; बस, वहाँ खत्म हो जाती हैं। बच्चे कभी हिसाब किताब लगाकर सेवा नहीं करते हैं। खैर! बात निकली तो ह्यूमन साइकोलोजी और चिल्ड्रन साइकोलोजी की थोड़ी बात हो गई, और जरूरी भी थी क्योंकि पूरा ध्यान विज्ञान मन पर ही तो खड़ा है। संपूर्ण योग विद्या मन की शांति के लिए है। विश्व के मनीषियों ने हजारों वर्ष तक मनुष्य के मन को पढ़ने का ही तो काम किया है।

दोस्तो! आज पूरी दुनियां हाथ धो कर योग के पीछे पड़ी है। परंतु ध्यान कहता है, कि आप मेरे निकट आ जाओ, योग स्वत: आपके पास आ जाएगा। एक सधे तो सब सधे . . . ., परंतु लोग उठा-पटक में लगे हैं। कसरत के लिए आसन और आधी-अधूरी टूटी-फूटी प्राणायाम विधियों के द्वारा ज्यादा अस्वस्थ हो रहे हैं।

मैं कहती हूं कि छोटी-छोटी घटनाओं पर लक्ष्य दो। छोटी-छोटी विधियाँ याद रखो जो आपके जीवन में रोज-ब-रोज घटती हैं। तर्क मत

करना कि ऐसी छोटी–छोटी विधियों से क्या होगा? ऐसे प्रश्न आपके मन में इसलिए उठ सकते हैं क्योंकि आज तक धर्म के ठेकेदारों ने आपको बहुत ही भयभीत रखा है। सरल बातों को कठिन करके बताया है और कठिन बातों को बाजारू। आपके मन को उन लोगों ने अपराध भाव से भर दिया है। आपका मानस ऐसी ग्रंथियों से भर गया है कि आप पापी हो।

दोस्तो! मनुष्य का स्वयं का दर्शन ही खो गया है। वह केवल प्रदर्शनों से प्रभावित होकर अंधे कुए में कूद रहा है। परन्तु करुणा की बात यह है कि उस अंधे कुए को वह आदर्श धर्म स्थान मान रहा है। खैर छोड़ो!

आपका ध्येय अगर ध्यान ही है, शांति ही है तो पहले छोटी–छोटी बातों ही आरंभ करना पड़ेगा। चित्त को एक लक्ष्य करने की कला सीखनी पड़ेगी। सारी लघुताग्रंथियों में से बाहर आना पड़ेगा। हर घटना में से खुली आंख से कुछ न कुछ सीख लेने का रवैया अपनाना पड़ेगा। ऐसा करने में आप छोटे या अधार्मिक नहीं हो जाओगे।

दोस्तो! खोज ही ज्ञान प्राप्ति का सही मार्ग है। सजगता और सभानता ही आपकी मदद करेगी। बाकी कसरत तो सरकस के भालू–बंदर भी कर लेते हैं और हाथी शिवजी की आरती उतारता है इससे क्या? वे योगी या भक्त बन गए? वे पशु मिट जाएंगे? मन बंदर जैसा चंचल है। उसे शारीरिक क्रिया कलाप में विशेष रस आता है। परंतु याद रहे शारीरिक क्रियाओं से मन को शांत नहीं किया जा सकता। वह पहले द्वारा ही कुछ ज्यादा क्रियांवित है। केवल सजगता और सभानता से उस चंचलता से पार जाया जा सकता है। आत्मबोध ही सबसे ज्यादा आपकी मदद कर सकता है।

दोस्तो! छोटी-छोटी विधियों में रस लेना सीखो। सही बात को समझने की क्षमता विकसित करो। जो सत्य की खोज करता है, वह सत्य को पाकर ही रहता है।

प्यारे साधको!

यहाँ मुझे बात वात्सल्य ध्यान की करनी है। यह मेरे लिए अनुभव सिद्ध प्रयोग है। इसमें आपको केवल दिल के द्वार खोलने हैं। मानसिक रूप से कंजूस नहीं बनना है। आपका हृदय वात्सल्य से भरा है। विशुद्ध प्रेम का झरना वहाँ बह रहा है। संकुचित मत हो जाओ। उस झरने को बंद मत कर दो। ऐसा करने में ना ही कोई समझदारी है, ना ही कोई फायदा। केवल आपका नुकसान ही है।

प्यारे साधको!

किसी भी बच्चे को देखो, तब क्षण भर खेल लो उसके साथ। उसे खिलाओ, उसे हंसाओ, बच्चे के साथ बच्चा बन जाओ। उस बच्चे बनने की क्षण में आपके हृदय में जो भाव उठता है उसे ही कहते हैं वात्सल्य भाव। डूब जाओ पूरी तरह से बच्चे के साथ खेलने में। इस तरह से खेलो कि बच्चा आपके साथ सुरक्षा और आनंद का अनुभव करे। बच्चा भले किसी का भी हो। बन जाओ उसकी माता, उसके अभिभावक।

दोस्तो! बच्चा जब भूखा होता है तभी उसको भोजन के लिए माता की विशेष आवश्यकता है। उसके सिवाय के समय में निर्मल भाव से आप उसको गोद में उठाएंगे तो वह नन्ही-सी जान आपके प्रेम तरंगों को पहचान लेगी। आप वास्तव में अहिंसक होंगे तो वह तुरंत आपका भरोसा कर लेगा। आपके साथ खेलने लगेगा। बच्चा अगर डरपोक है तो

आपको अपने व्यवहार से उसमें विश्वास जगाना पड़ेगा। तब वह आपके साथ भी खिलकर हंसने लगेगा।

बच्चे के हास्य से आपके दिल में एक छोटी-सी बगिया खिल जाएगी। वातावरण में खुश्बु फैल जाएगी। दोस्तो! जीव जब खुश होता है तब उसके शरीर के सारे कोष पुल्कित और प्रफुल्लित हो उठते हैं। मैं शरीर के प्रत्येक कोष को पुष्प कहती हूँ। बाहर के पुष्पों के खिलने से भीतर के पुष्पों का खिलना आज बहुत जरूरी हो गया है। जिसके भीतर का चमन खिला हुआ है ऐसा मनुष्य किसीकी बगिया नहीं उजाड़ सकता। और एक कांटा कई जिंदगियों को खत्म करने के लिए काफी है।

प्यारे साधको!

अब विधि को ढंग से समझ लो। कोई भी छोटा सा बच्चा जब आपके हृदय को आकर्षित कर रहा हो तब उसे उठा लो गोद में। या उसको झूला झुलाओ, उसके लिये लोरियाँ गाओ, उसे कहानी सुनाओ, उसके साथ हंसो, हंसाओ, खेलो। मन को ज्यादा सोचने का वक्त मत देना। अगर मन में पड़ा हुआ अहंकार हावी हो गया तो आप एक अलौकिक आनंद से वंचित रह जाएंगे।

बच्चे को गोदी में उठाकर उसकी भाषा बोलने लगो, तुतलाओ, इधर-उधर ज्यादा ध्यान मत देना, लोगों के बारे में ज्यादा सोचने की जरूरत नहीं है। आप खेलना सीखो और खिलना सीखो। ऐसी क्षणों में आपका वात्सल्य भाव भीतर की सतह तक पहुंच जाएगा। आप अचानक बदल जाएंगे। उस सहजता में जीने का मौका मत गंवाओ, बच्चे के साथ बच्चा बनना सीख लो। अगर ऐसा हो गया तो एक छोटा-सा बच्चा उसकी हँसी की एक छोटी-सी झलक मात्र से आपको ध्यान में पहुंचा

देगा। लेकिन आपने कभी ऐसा सोचा नहीं है। इसलिए मेरी बात सुनकर आश्चर्य भी लगेगा।

बच्चे की हंसी आपको बदल देगी। इस विधि में आपको केवल वात्सल्यपूर्ण बनना है। आपका वात्सल्य बच्चे के लिए रसायण का काम करेगा, आपका प्यार भरा स्पर्श बच्चे को बदल देगा और बच्चे का हास्य आपके रसायणों को। वह जैसे–जैसे आनंदित होता जाएगा वैसे वैसे आपके हृदय की आनंद की मात्रा भी बढ़ती जाएगी, वह आनंद अति पावन है, परमात्म स्वरूप है। उस क्षण में आप पृथ्वी पर होते हुए भी एक दिव्य लोक में चले जाते हैं।

दोस्तो! मेरे शब्दों पर मत जाना। आपको इसे एक ध्यान विधि मानकर उसमें डूबना है। पूरे–पूरे भाव से करना है। तभी शायद मेरी बात आपकी समझ में आएगी। तंत्र कहता है कि ज्ञान ही परमात्मा है, आनंद ही परमात्मा है, वही सत्य है।

दोस्तो! यह एक बहुत साधारण, सहज प्राप्य और एक छोटी–सी विधि है परंतु उपलब्धि बड़ी है। आप बच्चों पर वात्सल्य बरसाते बरसाते कब आनंद रूप हो गए, उसका आपको भी पता नहीं चलेगा। आपका मन, मद, पद सबकुछ आप भूल जाएंगे, कुछ क्षणों के लिए। तब जिस दिव्य क्षण का निर्माण हुआ है उसमें समग्रता से प्रवेश करने का प्रयास करना। वह एक लौकिक नहीं परंतु आध्यात्मिक प्रयास होगा और आप अनुभव करेंगे कि मन विदा हो गया है।

आप और बच्चे के बीच में जो प्रेम और आनंद का प्रवाह बह रहा है – वही परमात्मा है, वही अ–मनी अवस्था है। याद रहे, बच्चों के उपरांत भी जिस किसी को भी वात्सल्य की जरूरत हो वहाँ वात्सल्य बरसाओ — आप पर आशीर्वाद बरसेंगे।

भरितावस्था ध्यान

ध्यान सूक्ति - 145

अनुकुल खान-पान रसपूर्णा, तेहि से स्फूति बक्षे अन्नपूर्णा।
ते आनन्द से शक्ति संचारा, तेहि में प्रवेशो भूलि संसारा।
तुष्टि पुष्टि उल्लास बढावे, सम्यक भोजन जीव जब पावे।
क्षुधा तृषा से निवृत्त भयहु, साधक अवश्य धारणा धरहुं।
ते रस ब्रह्म रूप तव जानहु, नाड़ी में परमानन्द मानहु।।

ध्यान विधि - 145

अनुकूल भोजन से जब रसपूर्ति, तुष्टि और शक्ति का अनुभव हो रहा हो तब उसे ध्यान बना लो और परमानंद को प्राप्त कर लो।

भोजन करना यह एक व्यक्तिगत उत्सव है। उसमें तल्लीन हो जाओ। आप जब इतनी रसपूर्णता से भोजन करेंगे तो आपमें शक्ति, स्फूर्ति और आनंद का संचारर होने लगेगा। भोजन सुपाच्य बन जाएगा। भोजन करते वक्त भोजन रूप बन जाओ। उन क्षणों में संसार को, पूरी दुनिया को भूल जाओ। जिससे तुष्टि, पुष्टि और उल्लास बढ़ेगा। भूख और प्यास शांत होने से आप एक अद्वितीय सुख को प्राप्त करेंगे। उस सुख के क्षण में प्रवेश कर लो और उसे ध्यान बना लो। संपूर्ण निर्विचार बन जाओ।

प्यारे साधको!

भोजन के संदर्भ में शिव पार्वती को एक सुंदर ध्यान विधि बताते हैं।

दोस्तो! भोजन मनुष्य के जीवन की एक बहुत महत्वपूर्ण क्रिया है। वह केवल क्रिया नहीं परंतु प्रक्रिया भी है। भोजनक्रिया के बाद उदर में जाकर भोजन में लिए हुई पदार्थों पर जो प्रक्रिया घटित होती है उससे शरीर की नाड़ियों में रस बहने लगता है। मनुष्य भोजन के प्रति विशेष रूप से सजग नहीं है। वह स्वाद के प्रति सजग है, क्षुधा के प्रति सजग है परंतु भोजन के प्रति नहीं।

मैं कहती हूँ कि वही भोजन सम्यक भोजन है जो स्वाद के साथ आपके शरीर की तात्विक आवश्यकताओं को पूर्ण करे।

न्यूट्रीशन (पोषण शास्त्र) कहता है कि ख़ुराक के छः तत्व हैं। प्रोटीन्स, विटामिन्स, मिनिरल्स, कार्बोहाईड्रेट्स, फेट तथा वॉटर। जिस भोजन में ये सब घटक सम्यक रूप से हों अर्थात सप्रमाण हों, वह भोजन ही सही भोजन है। जिस भोजन में ये छः घटक शरीर को अपनी आवश्यकता

के अनुसार प्राप्त हों वही भोजन अगर आप ले रहे हैं, तो वह है भोजन के प्रति आपकी सजगता। इससे विशेष स्पष्टता करूं तो जिस घटक की ज्यादा जरूरत हो उस घटक को पूर्ण रूप में आप भोजन से ले रहे हो तो ये हुआ, सम्यक भोजन।

दोस्तो! विज्ञान ने तो यह अब कहा परंतु तंत्र विज्ञान ने शरीर के तंत्रों को लक्ष्य में रखकर और उन तंत्रों से जिस-जिस प्रकार की पुष्टि और तृप्ति होती है उन सबका समावेश तंत्राधारित ध्यानविधियों में किया है।

लाखों वर्ष पहले हमारे ध्यान गुरुओं ने कितना विशाल और सूक्ष्म अभ्यास किया होगा; मनुष्य के मन का, शरीर का, सृष्टि का, भोजन के विज्ञान का, आत्म तत्व का, और रस आदि का! जो आजतक मनुष्य का पूर्ण मार्गदर्शन करने के लिए पर्याप्त है।

मेरा अनुभव कहता है कि विज्ञान को जान लेने से ज्ञान में प्रवेश नहीं होता, थोड़ी बहुत जानकारी मिलती है। परंतु ज्ञान को पा लेने से विज्ञान की काफी बातें स्वानुभव में आने लगती हैं। इससे सिद्ध होता है कि ज्ञान मनुष्य को एक विशेष दृष्टि और क्षमता प्रदान करता है। हमारे मनीषियों ने ज्ञान द्वारा ही विज्ञान को जाना है। परंतु विज्ञान अभी तक ज्ञान की सूक्ष्मताओं में प्रवेश नहीं कर पाया है। वह पदार्थ और प्रयोग पर ही अटका हुआ है। क्योंकि उसमें ध्यान को स्थान नहीं है, न योग को।

अब आधुनिक विज्ञान धीरे-धीरे मेडीटेशन, रेकी, प्रेयर थेरेपी, म्यूज़िक थेरेपी, ओरा रीडींग और शरीर में से निकलती तरंगों पर ध्यान केन्द्रित कर रहा है। जिन्हें वे केवल चार नाम ही दे पाए हैं – अल्फा, बीटा, थीटा और डेल्टा। खैर!

प्यारे साधको!

शिव "विज्ञान भैरव तंत्र" में एक अलग ही ढंग से इन सारी बातों पर प्रकाश डाल रहे हैं। जो भाषा आज के मनुष्य की समझ के परे है। इसलिए मुझे थोड़ा विस्तार करना पड़ता है। दोस्तों! आखिर तो शरीर, शरीर से संलग्न सारा ज्ञान और विज्ञान सबका आधार भोजन पर है। भोजन से ही जीव का अस्तित्व है। शिव ने जो भोजन को ध्यान बनाने की विधि बताई है उसे मैंने, भरितावस्था भाव ध्यान नाम दिया है। क्यों? क्योंकि भोजन के बाद मनुष्य को सबसे पहले तो उदर के भरने की अनुभूति होती है, बाद में स्वादपूर्ति, संतोष, तृप्ति और शक्ति की।

पहले तो भोजन लेते ही उदर भर रहा है ऐसे अनुभव मात्र से शांति की अनुभूति होती है। क्षुधा शांत होने के बाद स्वादपूर्ति आदि का अनुभव होता है। परंतु दोस्तो ! स्वास्थ्य के संदर्भ में एक दूसरी बात के लिए भी सभान रहना चाहिए। भोजन स्वादिष्ट कम हो तो चल सकता है परंतु सेहत को अनुकूल होना चाहिए। भोजन बनाना और भोजन लेना दोनो एक कला है।

तंत्र कहता है कि भोजन को ध्यान बनाओ। पता नहीं, कितने लोग समझेंगे यह बात? आज का मनुष्य भूल गया है कि पाक शास्त्र की महिमा धर्म शास्त्र से बिलकुल कम नहीं। मैं तो कहती हूँ कि शरीर अगर धर्म के लिए साधन है तो भोजन इस साधन के लिए ईधन।

आदमी अपनी मोटरसाईकल का ध्यान रखता है कि उसमें कितना ऑइल और कितना पेट्रोल डलावना है। क्या वह उसमें कुछ भी डाल देता है? अन्न को बासी और विकृत करके खाने का मनुष्य को स्वभाव बन गया है। आदमी जीने के लिए खाता है परंतु कुछ लोग उल्टा कर देते हैं।

एक राष्ट्र की भोजन संस्कृति दूसरे पर लागू नहीं हो सकती। नदी तट पर विकसित संस्कृति के अनुसार मरुस्थल में नहीं जी सकते। परंतु अंधे अनुकरण ने आदमी को अपाहिज और बीमार कर दिया है।

दोस्तो! आपको अच्छा शायद न भी लगे। अथवा मेरा निवेदन रूढ़िवादी लगे। परंतु पीज़ा, होटडोग, बर्गर आदि यह पूर्व का भोजन नहीं है। जहाँ बर्फ गिरती हो वहाँ जंक फूड जल्दी नहीं बिगड़ते परंतु भारत में फ्रीज़ के अभाव में गरमी के दिनों में शाम तक तो ब्रेड, पाव में फंगस लग जाती है। और बाजारों में ठेलों पर बिकती चीजों में कहाँ है फ्रिज़ की या हाइजीन की व्यवस्था।

मैं जानती हूँ कि भोजन पोषण के विज्ञान को समझाना आज के यूवकों में बेवकूफी मानी जाएगी। परंतु मेरा विरोध फूड के प्रकार से नहीं है। अनहाइजिनिक वातावरण से है। आप पचा सकते हो तो भले जंक फूड खाओ परंतु पेट बिगड़ता है फिर भी स्वाद और अनुकरण के मारे पेट में डम्पिंग किए जा रहे हो, तो वह बेवकूफी है। आपका पेट कोई कूड़ेदान नहीं है।

दोस्तो! ध्यान सूक्ति कहती है कि खान-पान सेहत के अनुकूल और शरीर को पूरा पोषण दे ऐसा होना चाहिए। अगर भोजन ऐसा होता है तो मनुष्य को शक्ति और स्फूर्ति का अनुभव होता है।

दोस्तो! भारत भोजन की देवी को अन्नपूर्णा कहता है। यह पार्वती का एक नाम है। भोजन बनाने में और भोजन कराने मे कुशल गृहणि, भगिनी, पुत्री, और माताओं को भी पूर्व की धर्म संस्कृति अन्नपूर्णा कहती है। क्यों? अन्नपूर्णा पर पूरे परिवार के स्वास्थ्य का आधार है। वह स्वास्थ्य की देवी है। स्वास्थ्य पर सुख-स्मृद्धि का आधार है। सुखी-

समृद्ध, संतृप्त मनुष्य आजीविका की चिंता से मुक्त होकर अध्यात्म में रस ले सकता है। ध्यान में बैठ सकता है।

हमारे शास्त्र में एक बड़ा प्यारा श्लोक है। जिसमें शिव पार्वती के सामने भिक्षा पात्र लेकर खड़े हैं और विनीत भाव से कह रह हैं –

अन्नपूर्णे सदापूर्णे शंकरप्राणवल्लभे
ज्ञान वैराग्य सिध्यर्थम् भिक्षांदेहि च पार्वते

शिव भोजन क्यों चाहते हैं? भोजन द्वारा ज्ञान और वैराग्य रूपी परम सिद्धि प्राप्त करने के लिए। उत्तम भोजन से उत्तम स्वास्थ्य मिलेगा, और उत्तम स्वास्थ्य से उत्तम साधना हो पाएगी। परंतु लोग अक्सर ऐसे श्लोको को भोजन के वक्त केवल शब्दों में बोल जाने की औपचारिकता मात्र करते हैं। उसके गूढ़ार्थ को नहीं समझ पाते। केवल इतना ही नहीं वे तो अर्थ को समझने की कोशिश भी नहीं करते।

हमारे मनीषियों की बातों को समझा जाए तो प्रत्येक बात में धर्म और विज्ञान साथ–साथ चल रहा है। परंतु मूढ़ मानव न धर्म को सही अर्थ में जानना चाहता है न विज्ञान को। वह तो केवल धार्मिक दिखना चाहता है। क्योंकि सही अर्थ में धार्मिक बनेगा तो बदलना पड़ेगा। खाने–पीने का ढंग, उठने–बोलने का ढंग; सबकुछ बदलना पड़ेगा।

विज्ञान को समझेगा तो बाहरी जीवन का रवैया बदलना पड़ेगा। उसे कुछ भी बदलना नहीं है केवल दिखावा करना है। ऐसे लोगों के सामने सारे शास्त्र अर्थहीन हैं। एक बात और भोजन केवल छः तत्व और छः रसों से ही पूर्ण होना जरूरी नहीं, साथ–साथ आप भी रसमय होकर भोजन का आनंद लो यह बहुत जरूरी है।

ईश्वर ने मनुष्य के मुख में ऐसी व्यवस्था की है कि भोजन मुख में रखने के साथ ही कुछ अमृतग्रंथियाँ सक्रिय हो जाती हैं। जो भोजन पचाने में मदद करती हैं।

दोस्तो! भोजन करते वक्त भोजन रूप हो जाओ, शांतिपूर्वक आपकी समग्र चेतना को भोजन की ओर मोड़िए, एक–एक ग्रास का पूरा–पूरा स्वाद उठाओ। मैं भोजन कर रहा हूँ, उस बोध को न हटने दो। भोजन को एक उत्सव की तरह लो। आराम से भोजन को चबाओ और अंत:स्त्रावी ग्रंथियों को सक्रियो होकर उसका रस भोजन के रस के साथ मिलकर उसे विशेष रसपूर्ण बनने दो।

दोस्तो! भोजन करना यह एक व्यक्तिगत उत्सव है। उसमें तल्लीन हो जाओ। आप जब इतनी रसपूर्णता से भोजन करेंगे तो आपमें शक्ति, स्फूर्ति और आनंद का संचारर होने लगेगा। भोजन सुपाच्य बन जाएगा। भोजन करते वक्त भोजन रूप बन जाओ। उन क्षणों में संसार को, पूरी दुनिया को भूल जाओ। जिससे तुष्टि, पुष्टि और उल्लास बढ़ेगा। भूख और प्यास शांत होने से आप एक अद्वितीय सुख को प्राप्त करेंगे। उस सुख के क्षण में प्रवेश कर लो और उसे ध्यान बना लो। संपूर्ण निर्विचार बन जाओ।

दोस्तो! भोजन के वक्त तो इस अनुभव में से गुजरना है परंतु भोजन के बाद भी जो संतोष और स्वादपूर्ति तथा देह को पुष्ट होने की अनुभूति हो रही है उसे चालीस मिनिट तक देखते रहो। अस्तित्व को धन्यवाद दो इस पुष्टि के लिए, भोजन प्राप्त हुआ उसके लिए। मन को प्रार्थना से भर दो कि उस भोजन से आप हकारात्मक शक्तियों को प्राप्त करें, जिसका कल्याणमार्ग पर उपयोग हो।

दोस्तो! ध्यान करते-करते यह भी अनुभव करो कि क्षुधा के पहले आपकी क्या स्थिति थी? और बाद में क्या है? नाड़ियों में बहता हुआ रस मेरी दृष्टि से तो ब्रह्म रस से कम नहीं है।

प्यारे साधको!

कम से कम तीम महीने तक भोजन के वक्त और भोजन के बाद तीस मिनिट तक उस अन्नमय रस की धारणा कीजिए। धारणा ध्यान बन जाएगी और आपको बोध होगा कि रोज़ाना जिंदगी की कुछ क्रियाएं भी आपको परमानंद की अनुभूति करा सकती है। जिनमें से एक क्रिया है – भोजन।

सहिष्णुता विकास भाव

ध्यान

ध्यान सूक्ति - 146

तीक्ष्ण श्स्त्र से निज अंग बींधो, पुनि चित्तशक्ति से सहो ते साधो।
पीड़ बिन्दु में जे स्थिर होई, शिव का निर्मल ज्ञान ते लेइ।।

ध्यान विधि - 146

तीक्ष्ण शस्त्र से अपने ही अंग को बींधकर सहिष्णुता बढ़ाकर पीड़ा स्थान में स्थिर होकर जान लो कि पीड़ा किसको हुई? - इस अभ्यास से बोध घटित हो जाएगा।

शिव कहते हैं कि शरीर के किसी अंग को तीक्ष्ण शस्त्र से बींधो पीड़ा होना शुरू होगा। उस पीड़ा में प्रवेश करो। सूक्ष्म रूप से पीड़ा को देखो कि कौन से बिंदु पर पीड़ा हो रही है? धीरे धीरे पीड़ा कम हो जाएगी अथवा अदृश्य हो जाएगी और चित्त विचारों के पार चला जाएगा।

प्रिय साधको!

विधि थोड़ी विचित्र लगेगी परंतु वास्तव में यह विचित्र नहीं है। यह विधि कुछ विधियों के दूसरे छोर जैसी है। आज तक अन्य विधियों में आप देखते आए हो कि ऐसी काफी विधियाँ हैं, जिनमें चित्त को सुख और आनंद में स्थिर करना है। परंतु इस विधि में चित्त को पीड़ा में स्थिर करना है।

दोस्तो! पीड़ा सुख का दूसरा छोर है। पीड़ा और सुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। हमारे तंत्र शास्त्रियों ने सोचा कि अगर सुख में चित्त को स्थिर किया जा सकता है तो दु:ख में भी स्थिर हो सकता है। फिर एक विधि बताई कि जो साधक पीड़ा बिन्दु में अपनी चेतना स्थिर करेगा वह अवश्य अ-मन हो जाएगा।

प्रिय साधको!

सुख और दु:ख, बंधन और मुक्ति, राग और द्वेष सबकुछ मन की वजह से है। योग मार्ग कहता है कि ये सब मन के कारण हैं। जीवन में परिस्थितियाँ तो आती-जाती रहती हैं परंतु दुर्बल मन के लिए कुछ परिस्थितियाँ अथवा मनोदशा कमज़ोरियाँ अथवा दुर्गुण बन जाते हैं।

योग मार्ग कहता है कि उसके पार जाओ। अभ्यास के द्वारा धीरे-धीरे एक-एक सोपान चढ़कर इन्द्रियों पर संयम पाओ। परंतु तंत्र कहता है कि सब प्रकार की पीड़ाओं को आधार बनाकर उसके पार चले जाओ। आखिर सुख भी एक पीड़ा ही है। अगर सुख पीड़ा नहीं होता तो हमारे मनीषियों ने सुख के भी पार चले जाने की बात क्यों की? जीवन में सुख और दु:ख का द्वंद्व चलता रहता है। क्या जरूरत है द्वंद्व के पार जाने की? जीओ ना द्वंद्व में! परंतु द्वंद्व मनुष्य को तोड़ देता है, खोखला कर देता है। एक ही शरीर के दोनों हाथ शरीर को अपनी अपनी ओर खीचने के लिए ज़ोर लगाएंगे तो शरीर का क्या होगा? ज़रा सोचो। ऐसी स्थिति द्वंद्व से भरे मन की होती है।

संसार का परम सत्य यही है कि दुनियां में आए हुए प्रत्येक जीव को उस द्वंद्व से गुजरना पड़ता है।

आपके मन में प्रश्न उठेगा कि द्वंद्व मुक्ति का मार्ग क्या है? दोस्तो, यह एक मूल प्रश्न है, पुरातन प्रश्न है, और प्रमाणिक प्रश्न भी। केवल आपको नहीं ऐसे प्रश्न बुद्ध और महावीर को भी उठे थे। फर्क इतना है कि आपको भी प्रश्न उठते हैं। आप प्रश्न के पार जाना चाहते भी हो परंतु आपको प्रयास नहीं करना है। पुरुषार्थ नहीं करना है। आप साहस नहीं बटोर सकते हो। सोने की जंजीर का मोह आपको लोहे की जंजीरों में कैद कर देता है। अगर आप लोहे की जंजीर भी नहीं चाहते हो तो सोने की जंजीरों की आसक्ति से मुक्त होना पड़ेगा। जीवन में दु:ख नहीं चाहते हो तो सुख का मोह भी छोड़ना पड़ेगा। क्योंकि प्रत्येक दुन्यवी सुख के दूसरे छोर पर दु:ख प्रतीक्षा कर रहा है।

दोस्तो, जीवन तो एक रास्ता है। वह मंजिल तक सीधा-सीधा ही जाए, यह कोई ज़रूरी नहीं। नया रास्ता बनता हो तब कुछ गांव, शहर, खेत, खलिहान सबकुछ रास्ते में आते हैं। तब दूसरों का नुक्सान

न हो और विरोध खड़ा न हो इसलिए रास्तों को मोड़ दे दे कर बनाना पड़ता है। वैसा जीवन में भी है।

दुनियां में आप अकेले नहीं है कि आपके रास्ते में कोई न आए। इस संसार में आपके साथ हज़ारों लोग और हज़ार हज़ार घटनाएं प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़ी हुई हैं। आपको उन सबके अस्तित्व का ख़याल भी रखना है। आप नहीं करेंगे तो भी वे लोग तो उनका ख़याल जरूर रखेंगे। आपके न चाहने पर भी जिंदगी के रास्ते में दूसरों के लिए मोड़ आते हैं और मुड़ना पड़ता है। वे मोड़ सीधे भी हो सकते हैं, टेढ़े भी। तंत्र कहता है कि ध्यान के द्वारा दोनो मोड़ों को पार करके शांति की मंजिल को प्राप्त कर लो।

प्यारे साधको!

तंत्र में कुछ विचित्र ध्यान विधियाँ भी हैं। जिनमें दु:ख के मोड़ पर चलना है। जिसमें तीक्ष्ण शस्त्र, अर्थात सुई या सुया जैसे नुकीले शस्त्र से आपके शरीर के किसी भी भाग को वींधना है। फिर स्वयं के द्वारा ही पैदा की हुई पीड़ा को चित्त शक्ति के द्वारा सहन करना है। इस रीति से सहनशक्ति विकसित करनी है। यहाँ प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों करना है? ऐसा इसलिए करना है कि स्वयं को स्वयं के द्वारा ही दु:ख सहन करने के लिए इतना तैयार कर लो कि बाहर से आने वाले दु:खों से आप भयभीत न हों।

एक अर्थ में कराटे, बोाक्सिंग, मार्शल आर्ट वगेरे यह सब क्या है? हाथों से ईंटों को तोड़ना, रेत की थैलियों में पंच (घूंसा) मारना, लकड़ियों पर प्रहार करना आदि तरीकों से स्नायुओं की शक्ति को इतना बढ़ाना कि वृक्ष के थड़ में प्रहार करने से हाथ का उसमें घुंस जाना। दीवार और दरवाजे तक को लात मारकर तोड़ देना। यह सब क्या है? क्या इस प्रेक्टिस में कोई कम शरीर पीड़ा पहुंचती होगा। कसरतबाज

अखाड़े में जाते हैं तो क्या उसके शरीर को वहाँ पीड़ा नहीं होती होगी। लोग छाती पर पत्थर तुड़वाते हैं, क्यों? यह सब, आने वाली पीड़ाओं के सामने टिके रहकर अपनी सहनशीलता बढ़ाने के प्रयोग हैं।

शिव कहते हैं कि शरीर के किसी अंग को तीक्ष्ण शस्त्र से बींधो पीड़ा होना शुरू होगा। उस पीड़ा में प्रवेश करो। सूक्ष्म रूप से पीड़ा को देखो कि कौन से बिंदु पर पीड़ा हो रही है? धीरे धीरे पीड़ा कम हो जाएगी अथवा अदृश्य हो जाएगी और चित्त विचारों के पार चला जाएगा।

प्रिय साधको!

पुराने जमाने में हठ योगी ऐसे काफी प्रयोग करते थे। सिद्ध मार्ग में भी ऐसे प्रयोग प्रचलित हैं। अगर आपने देखा हो तो इस्लाम में आज भी ताजिया निकलते समय रोते हुए और छाती पीटते हुए मुस्लिम भक्त सूया जैसे तीक्ष्ण हथियारों से अपने गालों को हथिलियों को बींध देते हैं। ऐसी घटनाओं में भक्ति का एक जुनून-सा दिखाई देता है। वे लोग भले तंत्र को न जानते हों परंतु वास्तव में यह सहनशक्ति बढ़ाने का ही एक प्रयोग है। मूल में तो मन की तीव्रता ही मदद करती है। जो लोग भक्तिभाव की तीव्रता में सहनशक्ति बढ़ा लेते हैं वहाँ आस्था और श्रद्धा का बल काम करता है और तंत्र में सजगता कार्यरत होती है।

ऐसी विधि में चित्त शक्ति को धारणा में घनीभूत किया जाता है और दृढ़ धारणा आत्मबल के आधार पर सफल होती है।

प्यारे साधको!

जरूरी नहीं कि आप भी ऐसी कठिन विधि में से गुज़रो परंतु अन्य विधियों की तरह यह विधि भी मैंने बता दी। यदि आप चाहें तो इस विधि से गुज़रकर दु:खानुभूति द्वारा उससे पार जाने की क्षमता बढ़ा सकते हो। ऐसी क्षमता किसी वास्तविक कष्ट में भी आपकी मदद कर

सकती है। क्योंकि पीड़ा में चित्त को स्थिर करने का आपको अभ्यास हो जाता है।

मेरे बचपन की एक घटना है। मेरे पिताजी को पैर की पैनी में कुछ तकलीफ हुई थी ऑपरेशन अनिवार्य था, ऑपरेशन तो पंद्रह मिनिट का था परंतु पैर को सुन्न करना अनिवार्य था। मेरे पिताजी एक प्रयोगशील व्यक्ति थे। तंत्र की काफी विधियों में से गुज़र चुके थे। उन्होंने डॉक्टर से कहा कि मैं लोकल एनेस्थीसिया नहीं लूंगा। आप ऑपरेशन करना शुरु करेंगे तब से मैं हँसना शुरु करूंगा और ऑपरेशन के अंत तक हँसता रहूँगा। मेरे इस प्रयोग से आपको कोई विक्षेप न हो तो हँसते हँसते यह पीड़ाकारी शस्त्रक्रिया को मैं बिना किसी एनेस्थीसिया के मैं सह लूंगा। परंतु आपकी तैयारी होनी चाहिए। डॉक्टर भी बहुत मेच्योर था, उसने हाँ कहा। पिताजी के पैर पर डॉक्टर के शस्त्र चलने शुरू हुए और पिताजी का हँसना। ऑपरेशन पूरा हुआ तब तक पिताजी हंसते रहे और ड्रेसिंग हो गया। यह एक सत्य घटना है।

प्रिय साधको!

रमज़ान में ताजिया निकलते वक्त कई फकीरों को और लड़कों को मैंने तीक्ष्ण हथियारों के द्वारा अपने शरीर पर खून निकालते हुए देखा है। फिर भी उन्हें कुछ नहीं होता। दूसरे दिन वे बाजार में भी दिखते हैं। छोटा सा घाव दिखता है उसके शरीर पर परंतु वहाँ कोई इन्फेक्शन या पीड़ा नहीं होती। ये क्या है? ये मन की ही शक्ति है। एक विशेष पीड़ा में मन को पिरोकर दुन्यवी पीड़ा को भूलने का तरीका है। सहनशक्ति बढ़ाने का एक प्रयोग है।

तंत्र तो कहता है कि अपने हाथों अपने किसी भी अंग को तीक्ष्ण साधन से बींधकर चित्त शक्ति से उस पीड़ा बिन्दु को देखते रहो और पीड़ा को सहते रहो। जब उस बिंदु को देखने में चित्त स्थिर हो जाएगा।

तब क्षणभर में आप शिवरूप हो जाएंगे। उन क्षणों में आप संसार से ऊपर उठ जाएंगे; संसार से ऊपर उठने का अर्थ है, सुख-दुःख से ऊपर उठ जाना।

धारणा - 147

चित्तक्षोभ प्रवेश भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 147

नि:हाय असमर्थ स्थिति में, मन में क्षोभ भये वृत्ति में।
उसका भी उपयोग जो साधा, समावेश से लाभ अगाधा।।

ध्यान विधि - 147

परम असहाय स्थिति में चित्त वृत्ति के क्षोभ में प्रवेश करके समावेश अवस्था का अनुभव कर लो।

तंत्र कहता है कि जब आपके सामने परिस्थिति ऐसी खड़ी हुई हैं कि जहाँ वृत्तियाँ स्वतः रुक रहीं हैं, मन असहाय हो रहा है, बुद्धि निर्विचार होकर क्षीण हो रही है तो आधा काम तो परिस्थिति ने कर दिया आप उस स्थिति का लाभ उठाना सीख लो। असहाय स्थिति से पैदा हुई निवृत्त दशा में चित्त को स्थिर कर दो। उस क्षण को लंबी करो। असहाय स्थिति पर रोना-धोना छोड़ो, परिस्थितियाँ समय के साथ स्वतः बदल जाएंगी। आप सजगता के साथ जब परिस्थिति का स्वीकार करके ध्यान में उतरकर अस्तित्व को समर्पित हो जाएंगे तब सारी जिम्मेदारी अस्तित्व की हो जाएगी। अस्तित्व में से कही से भी किसी भी रूप में मदद मिल जाएगी। परंतु साधको, याद रहे! अस्तित्व मदद करेगा, ऐसी लालच से ध्यान नहीं करना है। आप दुःख में स्वीकार भाव से ध्यान में जोड़ते रहो अपनी चेतना को और अस्तित्व को उसका काम करने दो।

प्यारे भक्तो!

शिव कहते हैं कि जब आप हर तरह से नि:सहाय हो गए हो ऐसा अनुभव करो तब उस क्षण में चित्त में क्षोभ वृत्ति उत्पन्न होती है, भयानक निराशा उत्पन्न होती है। ऐसी क्षणों में उस निराशा का भी उपयोग कर लो। अपने आध्यात्मिक विकास में। दोस्तो, अपने चित्त को उस निराश अवस्था में लगा दो।

आम आदमी संपूर्ण रूप से जब असहाय हो जाता है तब उसका मन और मस्तिष्क काम करना बंद कर देता है। तंत्र कहता है कि उस हताशा की क्षण का उपयोग करना सीखो।

जब हर प्रकार से आप असमर्थ हो, आपकी कहीं से भी सहायता नहीं हो रही है और कोई रास्ता भी नहीं दिख रहा है; ऐसी क्षण में चार घटनाएं घट सकती हैं। क्या-क्या?

इसे समझने के लिए पहले पांच प्रकार की प्रकृति के लोगों को समझना पड़ेगा।

मैंने देखा है कि कुछ लोग ऐसे होते है कि असहाय स्थिति में ईश्वर का आधार लेते हैं। वे श्रद्धालु किस्म के लोग है। ऐसे लोगों के

लिए कहा गया है कि **हारे को हरि नाम**। जो हर तरह से हार जाते हैं वे शरणागति स्वीकार लेते हैं। भगवान पर अपने सारे प्रश्नों को छोड़कर हल्के हो जाते हैं। ऐसे लोग अपने पर कोई भी बोझ नहीं रखते हैं। वे भले–बुरे सभी परिणामों में परमात्मा की इच्छा समझ लेते हैं। ऐसी स्थिति में कुछ नकारात्मक परिणाम भी आए, तो उन्होंने अपने मन को भगवान का आधार देकर पहले से ही इस प्रकार से तैयार कर रखा है कि बुरे परिणाम के लिए ख़ुद ज़िम्मेदार नहीं रहता। न निराश होते हैं। उन लोगों का दृढ भरोसा होता है कि जो कुछ भी किया है भगवान ने किया है, मैंने नहीं और इस भाव के कारण वे अपराध भाव से मुक्त रह सकते हैं। ऐसे लोग भक्त की श्रेणी में आते हैं।

दूसरा प्रकार है, **हारा जुआरी दुगुना खेले**। हताशा और निराशा में डूबे बिना कुछ लोग संघर्ष करते रहते हैं। ऐसे लोग असफलता पर असफलता पाने पर संभव है कि बिखर जाएं, टूट जाएं, पागल हो जाएं, या किसी गुनाहित प्रवृत्तियों में लग जाएं। यह एक प्रकार का पागलपन है। ज्ञान, ध्यानी अथवा भक्त से अपराध नहीं हो सकता। उनकी सजगता उन्हें बचाए रखती है।

तीसरे प्रकार के लोग, जिन्हें दुनियाँ नास्तिक कहती है, जो न ही कुछ भगवान पर छोड़ सकते हैं और न ही ज्ञान में प्रवेश कर सकते हैं। ऐसे लोग रेश्नालिष्ट नाम से जाने जाते हैं, वे बुद्धिवादी हैं। उनके पास केवल बुद्धि का शस्त्र है। वे बौद्धिकवाद में ही जीते हैं। ऐसे लोग चालाकियों से दूसरों का लाभ उठाने में होशियार होते हैं। वे दूसरों के कांधों पर बंदूक धर सकते हैं।

ऐसे लोग प्रत्येक प्रश्न का उत्तर बुद्धि से खोजने का प्रयास करते हैं। तर्क अथवा कुतर्क पर जीते हैं। अथवा संयोगवादी बन जाते हैं। ऐसे लोगों में मैंने कुछ विकृत मानस के लोगों को विशेष रूप से देखा

है। हर स्थिति पर वे अपना अनुमान थोपते रहते हैं। अपने विचारों के अनुसार ही दूसरों को अपनी परिधि में फिट करने की कोशिष करते हैं। वास्तव में यह एक प्रकार की विकृति है। जरूरत से ज्यादा चालाक लोग भी अंत में पछताते हैं। स्वयं बौद्धिक हैं, ऐसे भ्रम में से बाहर न आ पाने की वजह से ऐसे लोग आजीवन मुखौटा पहनकर जीते हैं और मानते हैं कि उसके मुखौटे का किसीको पता नहीं है।

परंतु दोस्तो, झूठ तो झूठ है। वह कभी हकीकत में नहीं बदल सकता। ऐसे लोग **मियां की टंगड़ी** जैसे होते हैं जो हमेशा ऊंची रहती है। उसके पलायन को वे साहस मानते हैं। उसकी हार को भी वे हार मानने के लिए तैयार नहीं हैं।

चौथे प्रकार के लोग भाग्यवादी हैं। ऐसे लोग सबकुछ भाग्य पर छोड़कर पलायन कर जाते हैं। वे कहते हैं कि मेरा नसीब ही खराब है। मेरी ग्रहचाल अच्छी नहीं है, मेरे कर्म कठिन हैं। ऐसे आश्वासनों से वे जीवन गुज़ार देते हैं। ऐसे लोग भी बदल नहीं पाते। ऐसे लोग अपना रोना रोते-रोते स्वार्थ सिद्ध किए जाते हैं और जीवन गुज़ार देते हैं।

पांचवे प्रकार के लोग हताशा, निराशा, हार, असमर्थता और असहाय परिस्थिति को ध्यान बना देते हैं।

शिव इसी विधि की बात कर रहे हैं। आप जब असहाय परिस्थित में आ जाओ तब बिलकुल हताश हो जाने की जरूरत नहीं है। परिस्थितियों का बदलते रहना ही जीवन का सही क्रम है। जीवन गतिशील है। वहाँ कुछ भी रुकता नहीं, प्रतिपल सबकुछ बदलता रहता है। छोटे-छोटे परिवर्तनों को तो आदमी सह लेता है परंतु कोई असह्यं बड़ा परिवर्तन आने से आदमी असहाय हो जाता है। ऐसी स्थिति में क्या करें?

तंत्र कहता है कि ऐसी स्थिति में न बुद्धि से काम लेने की कोशिश करो न सुख का मुखोटा पहनकर खुद को ठगो, न भाग्यवादी

बनो, न दूसरों को निमित्त बनाओ, न खुद को कोसो, न झुंझलाओ, न गुस्सा करो, न आत्महत्या के विचार और न ही मन को अपराध भाव से भरने दो परंतु सीधे ही अपने भीतर उतर जाओ।

अति असहाय स्थिति में वृत्तियाँ निवृत्त सी बन जाती हैं, वृत्तियों का ज़ोर कम पड़ जाता है। योगी पुरुष वृत्तियों को शांत करने के लिए कितना यत्न करते हैं तब जाकर वे कहीं मन से थोड़े निवृत्त हो सकते हैं।

तंत्र कहता है कि जब आपके सामने परिस्थिति ऐसी खड़ी हुई हैं कि जहाँ वृत्तियाँ स्वत: रुक रहीं हैं, मन असहाय हो रहा है, बुद्धि निर्विचार होकर क्षीण हो रही है तो आधा काम तो परिस्थिति ने कर दिया आप उस स्थिति का लाभ उठाना सीख लो। असहाय स्थिति से पैदा हुई निवृत्त दशा में चित्त को स्थिर कर दो। उस क्षण को लंबी करो। असहाय स्थिति पर रोना-धोना छोड़ो, परिस्थितियाँ समय के साथ स्वत: बदल जाएंगी। आप सजगता के साथ जब परिस्थिति का स्वीकार करके ध्यान में उतरकर अस्तित्व को समर्पित हो जाएंगे तब सारी जिम्मेदारी अस्तित्व की हो जाएगी। अस्तित्व में से कही से भी किसी भी रूप में मदद मिल जाएगी। परंतु साधको, याद रहे! अस्तित्व मदद करेगा, ऐसी लालच से ध्यान नहीं करना है। आप दु:ख में स्वीकार भाव से ध्यान में जोड़ते रहो अपनी चेतना को और अस्तित्व को उसका काम करने दो।

धारणा - 148

विषादभाव प्रवेश ध्यान

ध्यान सूक्ति - 148

अति विलाप कोई जब करहि, साधक मन विषाद से भरहिं।
असह्यं स्थिति में साक्षी जागहूं, तेहि क्षण परम सिद्धि की मानहूं।।

ध्यान विधि - 148

कोई जब अतिविलाप कर रहा हो और आपका मन विषाद से भर जाए तब अचानक अपने साक्षी को जगाओ और आंतरिक शांति के विश्व में प्रवेश कर लो।

दोस्तो, विशाद ही सन्यास का आरंभ है। अर्जुन विषादयोग से भगवद् गीता का आरंभ होता है और मोक्ष सन्यास योग में उसकी समाप्ती है। गीता जीवन का एक वास्तविक और एक उत्तम गीत है। वह कोई काल्पनिक बातें नहीं परंतु मनुष्य जीवन को छूकर बहती हुई एक कर्मधारा, ज्ञानधारा और मोक्षधारा की त्रिवेणी है।

प्यारे साधको!

मैं बार बार कहती हूँ कि हमारे आसपास छोटी मोटी ऐसी कई घटनाएं घटती रहती हैं कि जिसे आप ध्यान का माध्यम बना सकते हैं।

अगर आप सही अर्थ में ध्यानी हो, सच्चे ध्यान प्रेमी हो, एक प्रमाणिक व्यक्ति हो तो ध्यान के लिए मिला हुआ एक भी मौका मत चूको। मैं कहती हूँ कि अनेक स्थानों पर और असंख्य घटनाओं पर आप ध्यान कर सकते हैं।

दोस्तो, यहाँ मैं जो विधि बताने जा रही हूँ वह मेरे अनुभव में से आई है, जो मैं आपके साथ बाँटने जा रही हूँ।

खास करके, भारतीय समाज में मृत्यु के पीछे रूदन और विलाप करने का एक कुरिवाज है। ऐसा करना एक औपचारिकता बन गया है। उसे मानो मृत्यु की संस्कृति बना दिया गया है। आज शहरों में तो लोग अपनी भावुकता और संवेदना खो रहे हैं परंतु गाँव में आज भी मिश्रित मानसिकता वाले लोग मिलते हैं। जिनमें से कुछ रोने वाले झूठे और कुछ सच्चे होते हैं। ये रोना-चिल्लाना और छाती पीटना एक रूढ़ परंपरा बन गई है।

मृत्यु उपरांत भी कुछ घटनाओं में विषादपूर्ण घटनाएं देखने को मिलती हैं। कभी प्रिय पात्र के विरह में तो कभी अनचाही आपत्ति आ जाने से या कभी भूकंप आदि कुदरती प्रकोप से जान-माल की हानि हो जाने से मनुष्य टूट जाता है और अति विलाप करने लगता है, रोता है, फिफयाता है। उसे देखकर दूसरे लोग भी विक्षिप्त हो जाते हैं और अपने पर संयम नहीं रख पाते। ऐसे इर्द-गिर्द के लोग भावनाओं में बह जाते हैं।

मैं कहती हूँ कि भावनाशील होना अच्छी बात है परंतु अंजाने में भावनाओं में बह जाना यह गलत है। इसका अर्थ ऐसा नहीं करना कि दु:खी या विलाप कर रहा हो ऐसे व्यक्ति के लिए सहानुभूति मत रखो। परंतु सहानुभूति के अर्थ को समझना। सहानुभूति का सीधा-सीधा ऐसा अर्थ मत लगाना कि दूसरे की पीड़ा को खुद की पीड़ा बना दो।

दोस्तो! सहानुभूति का अर्थ है, पीड़ित व्यक्ति को या उसकी मनोदशा को समझना। सहानुभूति एक बात है और भावनाओं में बह जाना दूसरी बात है।

सहानुभूति से अगर कुछ श्रेष्ठ है तो वह है करुणा। करुणा सर्वोत्तम है।

दोस्तो! मानो कि एक आदमी रो रहा है उसके रोने की कोई खास वजह है, पीड़ा है। मान लो कि दस आदमी उसे आश्वासन देने के लिए आए और दसों भावुक होकर उसके समान ही मनोपीड़ा की कल्पना करके रोने लगें तो कैसी स्थिति होगी? कौन किसको संभालेगा? नहीं, बिलकुल नहीं। ऐसी स्थिति मैं आपको दु:खी मनुष्य के समान अनुभूतियों में से नहीं गुज़रना है। कल्पना में दु:खी नहीं होना है। दो व्यक्तियों की अनुभूति समान कैसे हो पाएगी? उसकी स्थिति अलग है आपकी अलग।

सहानुभूति का अर्थ मैं ऐसा करती हूँ कि दु:खी के प्रति करुणा

रखो, हो सके उतनी उसकी मदद करो। उसके प्रति आपकी संवेदना जगी रहे। आप उसे आश्वासन दो और उसकी दु:खी परिस्थिति में से उसे बाहर लाने के लिए उसमें साक्षीभाव जगाने का प्रयास करो। परंतु दु:खी के साथ-साथ रोने लगना अथवा उसकी मानसिक परिस्थिति में जुड़ जाना यह सहानुभूति नहीं है। सहानुभूति का अर्थ इतना ही करो कि दु:ख की स्थिति में उसका साथ दो और उसको दु:खी मानसिकता में से बाहर लाने की कोशिश करो।

प्यारे साधको!

यह ध्यान विधि एक विशिष्ट विधि है। विधि बताने के पहले आपको जगाने के लिए इतनी भूमिका अनिवार्य थी इसलिए इतना कहा। अब आइए विधि की ओर। अगर आप सजग हैं तो किसीकी दु:खद परिस्थिति में आप उसकी मदद करते हुए भी विलाप की क्षणों का ध्यानस्थ होने में उपयोग कर सकते हो। जब कोई अति विलाप कर रहा हो और आपका हृदय विषाद से भर जाए, स्थिति असंह्य बन जाए तब अचानक केन्द्र में उतर जाओ और अपने साक्षी को जगाओ।

दोस्तो, विशाद ही सन्यास का आरंभ है। अर्जुन विषादयोग से भगवद् गीता का आरंभ होता है और मोक्ष सन्यास योग में उसकी समाप्ती है। गीता जीवन का एक वास्तविक और एक उत्तम गीत है। वह कोई काल्पनिक बातें नहीं परंतु मनुष्य जीवन को छूकर बहती हुई एक कर्मधारा, ज्ञानधारा और मोक्षधारा की त्रिवेणी है।

विषाद की स्थिति मनुष्य को शीघ्र ही विरक्ति के प्रति ले जा सकती है। सुख में तो फिर भी मनुष्य का साक्षी भाव छूट जाता है और जीवन में रस आने लगता है परंतु विषाद में रस लेने लायक कुछ भी नहीं होता। फिर भी उसे ध्यान का माध्यम बना सकते हो।

प्यारे साधको!

कहीं भी विषाद और विलापयुक्त वातावरण देखो और मानसिक रूप से स्थिर रहना असंभव लगे तब अचानक आदेश दो स्वयं को कि वह उस विलाप और दु:ख की क्षणों में पूर्ण रूप से प्रवेश कर ले।

दोस्तो, विलाप के माहौल में मन निष्क्रिय हो जाता है। उस निष्क्रियता का लाभ उठाओ। विषाद की क्षणों में मति कुंठित हो जाती है। इसलिए वह भी ज्यादा विक्षेप नहीं करती। दोस्तो, मनुष्य को ज्यादा से ज्यादा अगर कोई विक्षिप्त कर रहा है तो वह है, मन और बुद्धि। दु:ख के माहौल में मन और बुद्धि की ओर से आधा सहयोग तो अपनेआप ही मिल जाता है। कोई विलाप कर रहा हो तो शरीर की चंचलता कम हो जाती है। मन और बुद्धि का विषाद में घिर जाने से मनुष्य का कुछ क्षणों के लिए वैराग्य में प्रवेश हो जाता है। अतीत के विचार और भविष्य की योजनाएं कुछ क्षणों के लिए खो जाती हैं। ऐसी क्षणों को बोलचाल की भाषा में लोग कहते हैं कि दिमाग काम नहीं कर रहा है।

दोस्तो, योगीजन काफी साधना के बाद ऐसी अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं। अगर किसी विषाद के माहौल में आपको ऐसी अवस्था का अनुभव हो तो ऐसे क्षण ध्यान में प्रवेश करने के लिए बहुत अच्छे हैं। उस क्षण को पकड़ लो। अपनी समग्र चेतना को उसकी ओर मोड़ दो। साक्षी को जगा कर विषाद के पार जाने की क्षमता को हासिल कर लो। आप भले वहाँ मौज़ूद हो फिर भी आपकी ग़ैरमौज़ूदगी हो जाए तो उसको परम सिद्धि समझ लो। सामने वाले की परिस्थिति को बदलने के लिए बाहर से भले सहयोग करते रहो परंतु भीतर से आपका भीतरी अस्तित्व एक स्थिर बिन्दु पर रुका होना चाहिए।

दोस्तो, आदमी सुख तो पचा जाता है परंतु दु:ख को आसानी से नहीं पचा सकता। यह ध्यान आपको सुख और दु:ख दोनों के पार ले जाएगा और आप स्थितप्रज्ञ अवस्था का अनुभव करेंगे।

धारणा - 149

रोगदर्शन ध्यान

ध्यान सूक्ति - 149

अति कृष दुखी रोगी जन देखि, मन में जागत बोध विशेषी।
तेहि बोध को पुनि पुनि स्मरहुं, साधक शीघ्र अक्षर पद ग्रहहुं।।

ध्यान विधि - 149

अति दुर्बल और रोगिष्ट मनुष्य को सभानता के साथ देखो हृदय में अचानक सत्य बोध घट जाएगा।

अतिक्षीण, दुःखी और बीमारी से ग्रस्त व्यक्ति को देखकर आपके मन में एक विशिष्ट प्रकार का बोध जगेगा। यह संसार के प्रति घृणा का भाव नहीं है परंतु संसार की असारता का ज्ञान है। इस बोध से मन की दौड़ थोड़ी देर के लिए रुक जाएगी। उस क्षण में प्रवेश कर लो और भीतर जागे हुए बोध को बनाए रखो। उस बोध का बार-बार स्मरण करो और एक दिन अचानक आप अक्षरता में प्रवेश कर लेंगे।

प्यारे साधको!

आपको पता है! प्राचीन काल के सभी वैद्य ऋषि थे। शुश्रुत, चरक, पतंजलि, वाग्भट्ट, च्यवन ..... क्यों? क्योंकि वे वास्तव में रोग और रोगी के निकट थे। उनका ध्येय धन नहीं था, आरोग्य था और आरोग्य के लिए पहले रोग और रोगी को समझना पड़ता है।

आप कहेंगे कि आप कहना क्या चाहती हैं? मैं यह कहना चाहती हूँ कि रोग को समझने के लिए रोगी के निकट रहना पड़ता है। रोग का निदान करने के लिए रोगी को धैर्य से सुनना पड़ता है। उसे विविध दृष्टि से देखना पड़ता है। ये सब देखते-देखते दो घटना घटती हैं - एक तरफ वैद्य की चेतना में रोग का उपाय आता है और दूसरी तरफ वैद्य अगर सजग है तो रोगी की परिस्थिति देखते-देखते निर्वेद अवस्था को प्राप्त करता जाता है।

दोस्तो, रोगियों का इलाज करते-करते ही कई लोगों का ज्ञान में और संतत्व में प्रवेश हो गया है। इतिहास तो कहता है कि कुछ संतो ने तो रोगी की सेवा ही अपनी साधना बना ली थी। क्यों? क्योंकि वे करुणावान थे। इतना ही नहीं, अगर आप रोगिष्ट के सानिध्य में सजगता से रहते हैं तो स्वतः वितराग की अवस्था घटित होती है। देह की

क्षणभंगुरता का पल-पल बोध होता रहता है।

निकट अतीत में देखा जाए तो सौराष्ट्र के संत देवीदास बापू और अमरबाई, राजकोट के रणछोड़दास जी, वडोदरा के पास वाघोड़िया के मुनि बाबा और मुनि आश्रम की अनुबहेन प्रसिद्ध हैं।

उसका अंत कैसे आया? उन्होंने शरीर कैसे छोड़ा? स्वस्थता से छोड़ा या असाध्य बीमारियों से? इस बात से मेरा कोई लेना-देना नहीं है। व्याधिग्रस्त होना यह शरीर का धर्म है। शरीर की क्षमता और अवधि पूरी हो जाने के बाद मृत्यु के लिए कुछ न कुछ निमित्त बन जाता है। परंतु मुझे बात ध्यान की करनी है।

मदर टेरेसा और आरोग्य की देवी लेडी नाइटेंगल को कौन नहीं जानता। वे लोग अपने-अपने क्षेत्र में रुग्णों की सेवा कर रहे थे और सेवा करते-करते ही वैराग्य को उपलब्ध हो गए। बीमारों की सेवा ही उनके लिए ध्यान, पूजा, पाठ, दान, धर्म सबकुछ था। दोस्तो, यहाँ बात रस और समग्रता की है।

मैं बार-बार कहती हूँ कि अनेक अनेक प्रकार की ध्यान विधियाँ हैं। ध्यान का अंतिम लक्ष्य समाधि है। समाधि का अर्थ है - संसार से विरति और परम तत्व के साथ अनुसंधान। प्रत्येक मनुष्य अपनी अपनी रस-रुचि के अनुसार ध्यान विधि को अपनाता है। प्रत्येक का रस भिन्न भिन्न विषय में होता है। परंतु बीमारों में रस लेने वाले लोग कम होते हैं। जो रुग्णों की सेवा कर रहे हैं, उन व्यक्तियों को रुग्णता में रस है ऐसा अर्थघटन मत करना। परंतु रुग्णता को मिटाने में उनकी करुणा प्रवाहित होती है और सजग रहने में रुग्णता उनकी मदद करती है।

रुग्णों की पीड़ा उनमें नश्वरता का बोध जगाए रखती है। उनकी सेवा से उन्हें आत्मसंतोष तथा अपना समय सार्थक होने का आनंद होता है। रुग्णों की आंखों से बरसती हुई दुआ उनके लिए धन से ज्यादा मूल्यवान होती है।

दोस्तो, ये सब बातें आज के डॉक्टरों के संबंध में नहीं कर रही हूँ। इसका अर्थ यह नहीं है कि आज मानवतावादी डॉक्टर नहीं हैं परंतु हज़ारों में एक। बाकी तो मरीज़ों की मजबूरी, पीड़ा, दु:ख और दर्द पर ही आज के डॉक्टरों के सुख-सुविधा और ऐशोआराम आधारित हैं। आज आरोग्य केन्द्र नहीं परंतु अस्पतालों के नाम पर कहीं कत्लखाने, तो कहीं टंकशाल चल रही हैं। अस्पतालों के बड़े बड़े नामों में *"नाम बड़े और दर्शन खोटे"* उक्ति गली गली में सिद्ध हो रही है।

किसी संस्कृत सुभाषितकार ने ऐसे डॉक्टरों पर व्यंग्य करते हुए कहा है -

वैद्यराज नमुस्तुभ्यम् यमराज सहोदर।
यमस्तुहरति प्राणान् स्त्वंतू प्राणां धनानि च।।

यमराज के सहोदर ऐसे हे वैद्यराज! आपको दो बार नमस्कार है। क्योंकि यमराज तो केवल प्राणों को हरते हैं परंतु आप तो प्राण और धन दोनों को। यह व्यंग्य आज के युग में लगभग वास्तविक बन गया है। खैर! इतना तो जरूर है कि आज के डॉक्टरों का दिल पीड़ितों को देखकर पिघलने की जगह प्रफुल्लित होता है। इसके भी कारण हैं। बीस लाख से लेकर करोड तक का डोनेशन देकर डॉक्टरी के क्रेज़ के कारण लड़के या लड़की को मेडीकल में एडमीशन दिलवाया तो उनके बच्चे भी क्रेज़ी होना स्वाभाविक है। मैं कहती हूँ कि व्यवसाय क्रेज़ से नहीं परंतु रस रुचि के अनुसार स्वीकारा जाना चाहिए। आपका व्यावसायिक क्षेत्र किसी की इच्छा के अनुसार नहीं परंतु खुद की इच्छा के अनुसार पसंद किया जाना चाहिए। हर माता-पिता की एक नैतिक ज़िम्मेदारी है कि वे बच्चे के रस रुचि का ख्याल रखें। परंतु ज़्यादातर माता-पिता अपने अधूरे स्वप्न अपने बच्चों के द्वारा पूरा करना चाहते हैं। यह दबी हुई इच्छा कभी-कभी अहंकार और अधिकार बनकर संतान के स्वप्नों को कुचल देती है। छोड़ो, हम बात कर रहे थे ध्यान की, ऋषियों की,

मुनियों की, सेवामूर्तियों की; जो मरीज़ों की सेवा करते-करते ज्ञान को उपलब्ध हो गए।

प्यारे साधको!

मैंने भी ऐसा अनुभव किया है। बाद में मेरे अनुभव को एक ध्यान विधि के रूप में आपके समक्ष रख रही हूँ। यदि आपकी उस क्षेत्र में चाह है, आपका हृदय करुणापूर्ण है और आपका स्वभाव सेवाभावी है तथा आप आध्यात्मिक हो तो शायद आपको इस विधि से मदद मिल सकती है। इस विधि में मुझे कुछ विशेष नहीं कहना है। क्योंकि यह थियरी की बात है ही नहीं। इसमें तो सीधा प्रेक्टीकल में उतरना है।

अति दुर्बल, पीड़ाग्रस्त और रोगिष्ट व्यक्ति को देखो अथवा ऐसे रोगी की सेवा के लिए जुट जाओ। उसकी सुश्रुसा में रहकर आपके मन में एक विशेष प्रकार का बोध जाग्रत होगा। देह की नश्वरता और क्षणभंगुरता को आप उसके द्वारा समझ पाएंगे।

दोस्तो, राजकुमार गौतम के साथ ऐसा ही हुआ था। एक रोगिष्ट मनुष्य को देखकर उसे मनुष्य शरीर सौन्दर्य के आत्यंतिक सत्य का पता चला और राजकुमार के भीतर वितराग उत्पन्न हो गया। राजकुमार गौतम ने संसार के सुख तो देखा था, शरीर का आनंद भी देखा था परंतु उसका दूसरा पहलू होश के साथ नज़र के सामने आया। बार बार उसके स्मरण ने राजकुमार को चेता दिया।

दोस्तो, विधि कहती है कि अतिक्षीण, दु:खी और बीमारी से त्रस्त व्यक्ति को देखकर आपके मन में एक विशिष्ट प्रकार का बोध जगेगा। यह संसार के प्रति घृणा का भाव नहीं है परंतु संसार की असारता का ज्ञान है। इस बोध से मन की दौड़ थोड़ी देर के लिए रुक जाएगी। उस क्षण में प्रवेश कर लो और भीतर जागे हुए बोध को बनाए रखो। उस बोध का बार-बार स्मरण करो और एक दिन अचानक आप अक्षरता में प्रवेश कर लेंगे।

वृद्धदर्शन ध्यान

ध्यान सूक्ति - 150

अति दुर्बल कृषकाय जराग्रस्त, वृद्ध देखि मन भये शोक ग्रस्त।
तेहि क्षण में साक्षी रूप जागहीं, साधक सत्य ज्ञान को लाधहीं।।

ध्यान विधि - 150

अति वृद्धत्व के कारण असहाय व्यक्ति को देखकर जब मन में क्षोभ उत्पन्न हो उसी क्षण में साक्षी जगाओ और संसार की असारता को जान लो।

दोस्तो, ध्यान विधि कहती है कि वृद्धत्व को देखो, देखते रहो। खुद का वृद्धत्व हो या अन्य का; उसका अनुभव करो, उससे डरो मत परंतु जीवन की यह भी एक वास्तविकता है ऐसा मानकर उसका स्वीकार करो, उसमें प्रवेश कर लो। मन अगर शोकग्रस्त बन जाए तो उस शोक को भी देखो। शोक से घिरा हुआ मन संकल्प विकल्प से पर हो जाएगा। यही क्षण कुछ प्राप्ति की है। उस क्षण में प्रवेश कर लो। वही क्षण सत्य ज्ञान को प्राप्त करने के लिए उत्तम है। उसी क्षण में साक्षी जाग उठेगा। मृत्यु का भय निकल जाएगा। देह का मोह छूट जाएगा। अगर इस साक्षीभाव का अभ्यास बना रहेगा तो जिन्दगी का तीसरा पहलू मुक्ति द्वार बन जाएगा।

प्यारे साधको!

यह विधि भी मेरी एक अनुभव सिद्ध और मौलिक विधि है। आपने अतिक्षीण शरीर वाले वृद्ध को कभी ध्यान से देखा है? बहुत सारे वृद्धों को तो देखा होगा परंतु सजगता के साथ कभी वृद्धत्व को देखा है?

आजकल युग बदल गया है। सबलोग वृद्धों की उपेक्षा करते हैं। तो लक्ष्य देने की बात तो बहुत दूर रही। ये सब माहौल का परिणाम है। आज दिन-ब-दिन अस्तित्व में आते वृद्धाश्रम-विभक्त कुटुम्ब युक्त समाज व्यवस्था, शहरीकरण, धनलोभ, मीडिया आदि का दुष्परिणाम है। मुझे भय है कि स्वतंत्रता के नाम पर विभक्त परिवार के पागलपन में भारत को ऐसा समय न देखना पड़े कि वृद्ध क्या होता है? यह देखने के लिए बच्चों को म्यूज़ियम की तरह वृद्धाश्रम में वृद्ध दिखाने ले जाना पड़े। धीरे-धीरे लोकमानस बेचारा होकर ऐसा तय कर ले कि अमुक उम्र के बाद घर के बुजुर्ग लोग स्वत: वृद्धाश्रम में चले जाएं। यह दुर्घटना एक रिवाज के रूप में अस्तित्व में आ जाए। जैसा पश्चिम में हो रहा है।

खैर! मुझे समाज व्यवस्था या वृद्धाश्रम पर बात नहीं करनी

है। बात एक विशेष ध्यान विधि पर करनी है। फिर भी जो बातें विषय की परिधि में आती हैं उन बातों पर भी कुछ कह देने से अगर युवा पीढ़ी को अपना कर्तव्य बोध हो, तो कुछ गलत नहीं है।

मेरी वाणी को आप केवल ध्यान विधियाँ मत समझना। वह एक महासत्संग है और सतसंग का प्रवाह मानव जीवन के पहलुओं को छूता हुआ आगे बढ़ता है।

जैसे गंगा का प्रवाह अपने दोनों किनारों के कई गाँवों को, शहरों को सुजल और सुफल बनाता हुआ आगे बढ़ता है वैसे ही मेरे सतसंग में ध्यान की बात केन्द्र में होने पर भी जो बातें आवश्यक लग रही हैं वे सब परिधि में आ जाती हैं। ग्रहणशील स्वभाव के व्यक्ति को ध्यान विधियों के उपरांत मेरी वाणी में से कुछ न कुछ तो अवश्य प्राप्त होगा।

प्यारे साधको!

विधि कहती है कि जिसका शरीर अत्यंत दुर्बल हो गया हो। जिस मनुष्य को वृद्धत्व ने पूरी तरह से घेर लिया हो, जो संपूर्ण पराधीन हो गया हो, अपने छोटे-छोटे काम भी अपने हाथों से न कर सकता हो और बिस्तर पर पड़ा हो अथवा चलते-फिरते कांप रहा हो। न ढंग से बोल सकता हो, न देख सकता हो, न सुन सकता हो, न खा सकता हो या न चल सकता हो; ऐसे मनुष्य को गौर से देखो। उसकी सुश्रुषा करते हुए विशेष सजगता के साथ उस अवस्था को गौर से देखते रहो, देखते रहो। फिर अपने भीतर देखो - क्या हो रहा है? कैसे विचार आ रहे हैं? आप भयभीत हो रहे हो? वृद्धत्व से डर रहे हो? ऐसा विचार आ रहा है कि मैं भी एक दिन ऐसा हो जाऊंगा?

दोस्तो, गौतम बुद्ध को ऐसा विचार आया था। ऐसे विचारों ने उसे व्याकुल कर दिया था। ऐसे विचार और दृश्य से ही उसके भीतर एक महामंथन शुरु हो गया था। वह भय नहीं था। वह मंथन ऊपरी स्तर

का नहीं था। वह एक आंतरिक संघर्ष था। वह किसी और के साथ नहीं परंतु स्वयं के साथ था। वह मानसिक स्तर का नहीं परंतु अस्तित्वगत था। मानसिक रूप से तो ऐसा दृश्य देखकर सबको भय, जुगुप्सा या चिंता पैदा होती है। परंतु वह सब क्षणिक होता है, शाश्वत नहीं। मनुष्य का मन बहुत चतुर है। दुर्बल क्षणों में लोमड़ी जैसा मन बाघ की खाल ओढ़ लेता है। अथवा ज्ञान का भ्रम पैदा करके खुद को आश्वासन देता है कि कल का क्या पता? अभी से चिंता करने की क्या जरूरत? हो सकता है कि हम इस उम्र में स्वस्थ भी हों अथवा संभव है कि जवानी में भी मर जाएं। वर्तमान अच्छा है तो वर्तमान में जी लो। खाओ-पीओ और मौज करो।

दोस्तो, ये सारे विचार हकारात्मक हैं। आशावादी मनुष्य के लक्षण हैं। परंतु ऐसी सयानी बातें करने वाला मनुष्य क्या प्रत्येक बात में वर्तमान में जी रहा है? एक वास्तविक मौज में जी रहा है? योजना मुक्त जीवन जी रहा है? खुद को पूरी तरह से अस्तित्व पर छोड़कर जी रहा है? अगर ऐसी बात करने वाला वास्तववादी हो तब तो ठीक है परंतु नाम और दाम के पीछे अंधी दौड़ लगाने वाले लोग जब सूफियाना बातें करते हैं तो ऐसी बातें उनके मुंह में शोभा नहीं देती। ऐसे लोग वास्तविकता से केवल पलायन करना चाहते हैं। वे कोई ज्ञानी नहीं हैं। खैर छोड़ो! मूल बात की ओर आईए।

ज़िंदगी एक ऐसा सिक्का है कि जिसके तीन पहलू हैं। बचपन, जवानी और बुढ़ापा। तीसरे पहलू पर जब जिंदगी करवट लेती है तब अगर साक्षी भाव बना रहे तो मनुष्य जीवन सार्थक हो जाता है। ऐसा आदमी ज़िन्दगी की परीक्षा में पास हो जाता है। परंतु जो आसक्तियाँ घेर लें और वासनाएं बढ़ती जाएं तो जीवन नर्कागार बन जाता है। क्यों? क्योंकि पराधीनता, शरीर की क्षीणता, असहायता, रोग ग्रस्तता

और अनेक प्रकार की पीड़ा के कारण जीवन की आशा की किरण न दिखाई दे रही हो और शरीर का मोह छूट न रहा हो तब मनुष्य विशेष पीड़ा का अनुभव करता है, निराशा का अनुभव करता है।

दोस्तो, ध्यान विधि कहती है कि वृद्धत्व को देखो, देखते रहो। खुद का वृद्धत्व हो या अन्य का; उसका अनुभव करो, उससे डरो मत परंतु जीवन की यह भी एक वास्तविकता है ऐसा मानकर उसका स्वीकार करो, उसमें प्रवेश कर लो। मन अगर शोकग्रस्त बन जाए तो उस शोक को भी देखो। शोक से घिरा हुआ मन संकल्प विकल्प से पर हो जाएगा। यही क्षण कुछ प्राप्ति की है। उस क्षण में प्रवेश कर लो। वही क्षण सत्य ज्ञान को प्राप्त करने के लिए उत्तम है। उसी क्षण में साक्षी जाग उठेगा। मृत्यु का भय निकल जाएगा। देह का मोह छूट जाएगा। अगर इस साक्षीभाव का अभ्यास बना रहेगा तो जिन्दगी का तीसरा पहलू मुक्ति द्वार बन जाएगा।

उत्तेजना क्षणप्रवेश ध्यान

ध्यान सूक्ति - 151

मन अरु पिंड उत्तेजित होई, स्थिर बनि तब निज रूप को ध्याई।
पूर्ण देह मन विस्मृत होई, पर वैराग्य जानहु सोई।।

ध्यान विधि - 151

देह और मन जब अति उत्तेजित हो जाएं तब भीतर से अचानक स्थिर हो जाओ और अपने मूल स्वरूप के सत्य को जानकर परम विरक्ति में प्रवेश कर लो।

मन अथवा शरीर किसी भी कारण से उत्तेजित हो जाए तो अचानक स्थिरता की धारणा बना लो। चित्त को एक अलग मोड़ में डाल दो, वह मोड़ है स्वस्वरूप का ध्यान। उत्तेजना की ओर से अपनी पूरी ऊर्जा को वापस खींच लो। जितने उत्तेजित हो गए, उतने हो गए। उसे ज्यादा वेग न मिलने दो, उसे बिलकुल उर्जा मत दो। उर्जा न मिलने से उत्तेजित मन या शरीर असहाय हो जाएंगे और स्वतः शांत हो जाएंगे। आपको केवल क्षणभर ही सावधानी रखनी है। उत्तेजित भले हो गए, उसकी चिंता छोड़ो। मन को अपराध भाव से न भरने दो। परंतु विधि का स्मरण करके तुरंत ही उत्तेजना को ऊर्जा देना बंद करो। ऊर्जा और उसके साथ बह जाना - यह उत्तेजना की ख़ुराक है। उसके प्रति जितना लक्ष्य दोगे वह दुगुनी बढ़ जाएगी। उसकी उपेक्षा करो, उसके प्रति लक्ष्य ही न दो। आपकी सारी शक्ति को शांति और धैर्य से अपने केन्द्र की ओर अर्थात हृदय, आत्मा या परम चैतन्य की ओर मोड़ दो।

प्यारे साधको!

उत्तेजित होना यह मनुष्य स्वभाव है। कुछ एग्रेसिव नेचर के लोग विशेष रूप से उत्तेजित हो जाते हैं। क्रोधी प्रकृति का आदमी तथा अ-धैर्यवान छोटी-छोटी बातों पर उत्तेजित हो जाते हैं। बच्चे अपनी चाही हुई चीज़ पाने के लिए उत्तेजित होते हैं। औरतें विशेषकर ऋतुकाल दौरान हॉरमोनल इम्बेलेन्स के कारण स्वभाव से चिड़चिड़ी और उत्तेजित रहती हैं। शरीर के रसायणों में बदलाव के कारण टीनेजर्स भी बार-बार छोटी-छोटी बातों में उत्तेजित हो जाते हैं।

हर आदमी कहीं न कहीं किसी न किसी बात से उत्तेजित हो जाता है। फिर भी हरेक बोलता है कि यार आवेश में आ जाना यह बुरा है, डोन्ट बी एक्साइटेड। परंतु वास्तव में उत्तेजना से मुक्त नहीं रह सकते।

दोस्तो, मैं यह नहीं कहूंगी कि उत्तेजित मत होना क्योंकि यह एक मानव सहज प्रकृति है। एक नोरमल आदमी की निशानी है और आम आदमी साधु-सन्यासियों को, योगियों को, सिद्धों को नोरमल या साधारण नहीं समझते हैं। वे लोग असाधारण माने जाते हैं। वे लोग

मानवीय स्वभाव से कुछ ऊपर उठ गए हैं।

प्यारे साधको!

मनुष्यता के दो छोर पर दो अति हैं। एक अति मानवीयता और दूसरी पशुता। अतिमानव को सुपरमैन कह सकते हैं। जो विशिष्ट शक्तिमान है और पशु बहुत नीचे है। मनुष्य दो अवस्थाओं के बीच में है। उसकी मानव सहज हरकतों को उसकी कमज़ोरी मानी जाती है। किन्तु सबसे पहले एक बात याद रखिए कि उत्तेजित हो जाना कोई अपराध नहीं है। वह केवल सजगता की गैरमौजूदगी है।

उत्तेजना, मन तथा मस्तिष्क का गहरा संबंध है। कभी बुद्धि को मान्य न हो ऐसी घटनाएं घटती हैं और आदमी उत्तेजित हो जाता है, कभी मन की धारणाएं टूटती हैं तब आदमी उत्तेजित हो जाता है, कभी भावनाओं पर ठेस पहुंचने से आदमी उत्तेजित हो जाता है, कभी कुछ पाने के लिए या कभी कुछ खो जाने से आदमी उत्तेजित हो जाता है। मन और मस्तिष्क के साथ-साथ शरीर भी उत्तेजित होता है। क्यों? क्योंकि हम न केवल मन हैं, न केवल शरीर, न केवल मस्तिष्क, न केवल आत्मा। मनुष्य मन, बुद्धि, शरीर और आत्मा का संयोजन है। उन सबमें से अहंकार जन्म लेता है। अहंकार को चोट पहुंचने से जीव सबसे ज्यादा उत्तेजित होता है।

मनोविज्ञान कहता है कि मनुष्य साइकोसिमेटिक (मनोदेहिक) है। परंतु मैं कहती हूँ कि मनुष्य साइकोइन्टेलेक्च्युल सोल (मनोदेहात्मिक) है। जो आत्मा शरीर, बुद्धि और मन को धारण करके घूम फिर रही है। मनुष्य के मन अथवा मति के प्रतिकूल जब कुछ भी घटित होता है तब उसका मन कभी क्रोध से, कभी घ्रणा से, कभी लोभ से, तो कभी द्वेष से उत्तेजित हो जाता है।

ऐसा नहीं कि केवल प्रतिकूल घटना से ही मनुष्य उत्तेजित होता

है परंतु कुछ सरप्राइज़िंग मेटर से, कभी प्रेम की क्षणों में, कभी लाभ की क्षणों में अथवा कभी आनंद की क्षणों में भी उत्तेजित हो जाता है। कभी-कभी कोई खास माहौल अथवा खान-पान भी उत्तेजना का कारण बन सकता है।

कुछ दिन पहले मैंने अखबार में पढ़ा था कि गरमी के दिनों में झगड़े, एक्सीडेन्ट तथा गुनाहों का प्रमाण बढ़ जाता है। क्यों? इसका कारण है, वातावरण। वातावरण के कारण आदमी स्वयं पर से संयम खो बैठता है और दुर्घटना घट जाती है। इसका असर पशुओं पर भी आता है। वडोदरा के एक सर्वे के अनुसार गर्मी के मौसम के दौरान डॉग बाइट से सात सौ केस सरकारी अस्पताल के दफ़्तर पर जमा हुए, उनमें से कुत्ते के काटने पर दो सो सात लोगों को इन्जेक्शन लेने पड़े। कहने का हेतु यह है कि वातावरण का असर पशुओं पर भी आता है तो मनुष्य का उत्तेजित होना तो स्वाभाविक है।

दोस्तो, साधारण मनुष्य को यह सलाह देना कि उत्तेजित मत हो - यह बेकार है। ये भी एक असाधारण सलाह है। क्योंकि उत्तेजना स्वभाव है। स्वभाव के विपरीत जाना अस्वाभाविकता है और स्वभाविकता जीवन है।

मित्रो, उत्तेजना की क्षणों में प्रवेश कर लेना। उसे मैंने एक ध्यान विधि बना ली है। यह विधि तंत्र शास्त्र के अंतर्गत नहीं है परंतु तंत्र पद्धति का एक अंश कह सकते हैं। तंत्र की किताबों में भले यह विधि न मिले परंतु मेरे बाद की किताबों में इस विधि का समावेश हो जाएगा। तंत्र का एक अर्थ है, रहस्यमय विधि।

दोस्तो, किसी भी साधक को या ऋषि को या संत को कुछ बातों का पहले अनुभव होता है बाद में वह शास्त्र बनता है। सभी शास्त्र ऐसे ही विकसित हुए हैं। अपने-अपने अनुभव में समाई हुई गीता को मुहम्मद,

मोहन, क्राइस्ट या मीरा अपने-अपने ढंग से गाते हैं। नाम भले अलग हो परंतु किसीको हम ग़लत नहीं कह सकते हैं। समय और भावों के तौर पर उन वाणियों में फ़ासला हो सकता है परंतु उसके परम सत्य में कोई फ़ासला नहीं है। उसमें से आप ऐसा नहीं कह सकते हैं कि किसका सच सच और किसका सच झूठ। सभी अपन-अपने अनुसार सही हैं। जो सत्य में उतरना ही नहीं चाहते उनके लिए सब झूठ है।

खैर! मैं यह कहना चाहती हूँ कि उत्तेजना क्षण प्रवेश ध्यान मेरे अनुभव में से उतरी हुई एक ध्यान विधि है। उसे अन्य ध्यान शास्त्रों के साथ नहीं जोड़ेंगे तो भी चलेगा। आप केवल विधि में से गुज़र लो, इसे समझ लो, कुछ जान लो, कुछ पा लो; इतना काफी है। मेरी बताई हुई विधियों के शास्त्रोक्तता के संबंध में अगर कोई आपसे बहस करना चाहे तो बहस में मत पड़ना क्योंकि एक ध्यानी का लक्ष्य बहस, नहीं ध्यान है। ध्यान की बात को लेकर या किसी भी ध्यान विधि को लेकर कोई व्यक्ति शास्त्रीय प्रमाण मांगे, तो वह मूढ़ता है।

एक बात याद रहे कि ध्यान के शास्त्र हैं परंतु ध्यान कोई शास्त्र नहीं, वह तो एक अनुभूति है; जो सबके लिए भिन्न-भिन्न हो सकती है। जिन्होंने अपनी अनुभूतियों को कागज़ पर उतारने की या व्यक्त करने की कोशिश की और लोगों तक पहुँच गया, वह शास्त्र बन गया; जो नहीं पहुंचा वह अ-शास्त्रीय रह गया। परंतु सत्य को शास्त्र से क्या लेना देना? शास्त्र कभी किसी सत्य के विरोध में नहीं हो सकता। क्योंकि सत्यों से शास्त्र बने हैं, शास्त्र से सत्य नहीं। हाँ, कुछ लोग सत्य अथवा शास्त्र विरोधी हो सकते हैं, यह बात अलग है। परंतु यह भी एक सत्य है कि झूठ कभी सच नहीं बन सकता।

मैंने कहीं लिखा है कि

तू ले सोगंध गीता की
या ले ले हाथ में कुरान

मगर सच है नहीं
उसको तू सच कर न पाएगा

मेरे अनुसार मनुष्य के कल्याणमार्ग में जो बाधारूप बने वह झूठ है और जो मनुष्य को जगा दे वह है सच। शास्त्रों से तो केवल सतप्रेरणा लेनी है, बहस करना नहीं सीखना है, और न ही वाद-विवाद।

दोस्तो, कुछ सत्यों का शास्त्रों से भी मेल नहीं खाता है। मीरा के नाच के बारे में नृत्य शास्त्र कहेगा कि मीरा का नृत्य शास्त्रीय नहीं है; तो आप क्या कहेंगे ?..... और एक कोठे वाली शराबियों को लुभाने के लिए शास्त्रीय नृत्य कर रही हो; तो उसके बारे में आप क्या राय देंगे ?.... भक्त नरसिंह मेहता का अंत्यजों के घर जाकर भजन गाना लोगों की नज़रों में धर्म शास्त्रों से विरुद्ध था। फिर भी नरसिंह मेहता को शास्त्र विरोधी नहीं कह सकते।

प्यारे साधको!

तर्कों से सत्य को नहीं पाया जा सकता और शास्त्रों से भी नहीं। क्योंकि शास्त्र तो केवल सत्य की व्याख्या करते हैं, सत्य को बताते हैं, सत्य के बारे में बातें करते हैं। सत्य के बारे में जानना और सत्य को जानना - इसमें बहुत फर्क है। विश्व के सारे शास्त्र सत्य से जन्मे हैं। इसलिए सत्य को प्रमाणित करने के लिए हर बात में शास्त्र को बीच में लाना यह मूढ़ता है। कुछ बातों को मैं शास्त्र विरुद्ध नहीं परंतु शास्त्र के पार की मानती हूँ। जैसे मीरा का नृत्य, ऐथेन्स की गलियों में सोक्रेटिस का नोजवानों के साथ बात करना, बुद्ध का नर्तकी आम्रपाली के घर भोजन स्वीकार करना, कृष्ण का कुबजा के प्रेम प्रस्ताव को स्वीकार करना, राम का शबरी के झूठे फल खाना; इसू के द्वारा वैश्या के निमत्रण को स्वीकारना-ये सारी बातें शास्त्र सम्मत भले न हों परंतु गलत भी नहीं हैं। मेरे अनुसार ये शास्त्रों के पार की बातें हैं।

दोस्तो, इसी तरह से ही मेरी दी हुई ध्यान विधियों को मेरे पूर्व के ध्यान गुरुओं द्वारा दिए शास्त्रों के साथ तुलना मत करना। अगर ऐसा करेंगे तो आपका दो तरीके से नुकसान होगा। एक तो आप उल्झन में पड़ जाएंगे, आपका मन शंका से भर जाएगा और दूसरा आप एक नई, सरल, साधारण और अच्छी विधि चूक जाएंगे।

खैर! ये सब बातें करनी जरूरी लग रही थीं इसलिए कर लीं। अब विषय की ओर आईए। मैं कह रही थी कि उत्तेजना यह मानव स्वभाव का एक सहज गुण है। इसे दबाना, रोकना, टोकना ये सब अ-शास्त्रीय है। ऋषि, मुनि, साधु, संत, देव, यक्ष, किन्नर सभी ने उत्तेजित होकर बहुत शाप दिए हैं और पाए भी है। ऐसा इतिहास कहता है। और मैं कहती हूँ कि उत्तेजना को दबाने से विशेष ख़राब परिणामों की संभावना है। तो क्या करें? मैं कहती हूँ कि उसके पार चले जाना यह कल्याणकारी है।

दोस्तो, कैसे जाएंगे उत्तेजना के पार? मेरा अनुभव बता रहा है कि मन अथवा शरीर किसी भी कारण से उत्तेजित हो जाए तो अचानक स्थिरता की धारणा बना लो। चित्त को एक अलग मोड़ में डाल दो, वह मोड़ है स्वस्वरूप का ध्यान। उत्तेजना की ओर से अपनी पूरी ऊर्जा को वापस खींच लो। जितने उत्तेजित हो गए, उतने हो गए। उसे ज्यादा वेग न मिलने दो, उसे बिलकुल उर्जा मत दो। उर्जा न मिलने से उत्तेजित मन या शरीर असहाय हो जाएंगे और स्वत: शांत हो जाएंगे। आपको केवल क्षणभर ही सावधानी रखनी है। उत्तेजित भले हो गए, उसकी चिंता छोड़ो। मन को अपराध भाव से न भरने दो। परंतु विधि का स्मरण करके तुरंत ही उत्तेजना को ऊर्जा देना बंद करो। ऊर्जा और उसके साथ बह जाना - यह उत्तेजना की ख़ुराक है। उसके प्रति जितना लक्ष्य दोगे वह दुगुनी बढ़ जाएगी। उसकी उपेक्षा करो, उसके प्रति लक्ष्य ही न दो।

आपकी सारी शक्ति को शांति और धैर्य से अपने केन्द्र की ओर अर्थात हृदय, आत्मा या परम चैतन्य की ओर मोड़ दो।

दोस्तो, याद रहे! आपकी उत्तेजना से और लोग तो प्रभावित होते हैं, उसे दुनियां भी देखती है, हांसी भी होती है परंतु सबसे ज्यादा उसका शिकार आप ही बनते हो।

मैंने कुछ लोगों को देखा है। कुछ हृदयहीन लोग किसीको उकसाते हैं और फिर उसको क्रोधित या उत्तेजित देखकर उसका आनंद उठाते हैं। क्रोध का शिकार बना हुआ मनुष्य खुद को और और और उत्तेजित करता जाता है। अज्ञान में फूलता जाता है तथा मान लेता है कि मेरे आतंक से सब डर रहे हैं। हकीकत में कोई नहीं डर रहा है। अगर कोई कमज़ोर डर भी रहा है तो कमज़ोर को डराना यह सबसे बड़ी कमज़ोरी या नपंसकता है, और क्रोध में उत्तेजित आदमी की कमज़ोरी कपड़े उतारकर सबके सामने खुली पड़ रही है।

दोस्तो, उत्तेजनाक्षण प्रवेश। यह एक ऐसी विधि है कि जिसमें न आंख बंद करनी है, न पलाठी लगाकर कहीं एकांत में बैठना है। यह तो दिन-ब-दिन आपके साथ घटती घटनाओं में चलते फिरते सजग रहने की एक सूक्ष्म विधि है। जो सूक्ष्म रूप से क्षण भर में ही आपके भीतर घट जाती है।

फिर से एक बार याद रखो! उत्तेजना के क्षणों में अपनी सारी शक्ति को अंत:स्तल की ओर मोड़ दो। याद रखो! आपकी एषणाएं, वासनाएं और अहंकार उत्तेजित हो रहा है। आपके उत्तेजित होने का कोई मार्ग ही नहीं है। आप तो परम स्थिर और शांत हो।

जिस क्षण मन उत्तेजित हो और शरीर प्रतिक्रियाएं करने लगे उसी क्षण विचारो कि मैं यह क्या कर रहा हूँ? यह कुछ अस्वाभाविक हो रहा है। सजगता के साथ ही भीतर से आवाज़ उठेगी कि मेरे साथ कुछ

गड़बड़ हो रही है।

दोस्तो, इतना इशारा काफी हो जाएगा। आप तुरंत ही शांत होने लगेंगे। स्वस्वरूप पर ऊर्जा मुड़ने के साथ ही शरीर और मन की क्षणभर के लिए विस्मृति हो जाएगी। अहंकार कमज़ोर पड़ जाएगा, साक्षी भाव जागने से उत्तेजना शांत हो जाएगी और आप एक खतरनाक घटना से आपको बचा लेंगे। यह क्षण मोक्षतुल्य मूल्यवान है।

सुख-दुःख पराकाष्ठा मुक्ति भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 152

अति सुख दुख की चरम सीमा में, करो प्रवेश सजग मन तामें।
ते क्षण अति चमत्कृति भयउ, साधक क्षण में ब्रह्म पद लयऊ।।

ध्यान विधि - 152

सुख-दुःख की पराकाष्ठा की क्षण में सजगता से प्रवेश करके अपनी मूल अवस्था को जान लो।

नदी का बहना ही उसका ध्येय है। बहते-बहते ही वह अपने गंतव्य स्थान को प्राप्त कर लेती है परंतु बहती है, बेइरादा। ऐसे ही जागा हुआ साधक संसार रूपी नदिया के सुख-दुःख रूपी किनारों को छूता हुआ केवल बहता रहता है। न तो वह संसार को जल्दी तैर जाने की चिंता में है, ना ही संसार में डूब जाता है। ऐसे साधक सुख-दुःख की पराकाष्ठा में भी साक्षी और करूणापूर्ण बने रहते हैं। जिस तरह से नदी ऊबड़-खाबड़ रास्ते से बहती हुई, सबको कुछ न कुछ देती जाती है वैसे ही ज्ञानी फकीर जीवन के प्रवाह में सहजता से बहता-बहता ईश्वर रूप बन जाता है। इस विधि से गुजरने वाले साधक निर्भय होते हैं। क्योंकि खोने और पाने के भाव से ऊपर उठ गए हैं।

प्यारे साधको!

मैं कहती हूँ कि एक बार दु:ख को झेल जाना या सहन कर लेना आसान है परंतु आदमी अति सुख की क्षणों को अकेला नहीं सह पाता। वह अपने सुख को बांटना चाहता है। वह अपनी खुशियों को व्यक्त करना चाहता है। दूसरे के बिना वह पूरी तरह से खुश नहीं हो सकता। यहाँ से द्वैत का आरंभ होता है। यही मनुष्य की सबसे बड़ी दुविधा है। मैं जो ध्यान विधि बताने जा रही हूँ वह विधि पूर्ण रूप से ज्ञान पर खड़ी है। उसमें ज्ञान का आधार लेकर अर्थात एक शुद्ध समझ का आधार लेकर सुख और दु:ख दोनों की पराकाष्ठा में दोनों स्थितियों से अछूते रहने का इलम पा लेना है।

ज्ञान क्या है? ज्ञान है जीवन में आती जाती प्रत्येक परिस्थितियों का साक्षी भाव से स्वीकार। ज्ञान है स्वयं में मस्त रहना। ज्ञान है सुख-दु:ख में समभाव और स्थिरता रखना।

दीवानों का आलम है जुदा
न खोना है ना पाना है
बनने की बातें बंद करो
यहाँ आकर तो मिट जाना है।

दोस्तो, ज्ञान में मनुष्य मिट जाता है अर्थात उसका अहंकार मिट जाता है। साधारण मनुष्य का अस्तित्व अहंकार पर खड़ा है। ज्ञानी का अस्तित्व केवल ज्ञान पर। ऐसे ज्ञानियों के जीवन में कुछ भी घट जाए उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। ऐसे लोगों को दुनिया दीवाने कहती है। परंतु उसकी एक अलग दुनिया होती है। कुछ भी खो जाने से उन्हें कोई ग़म नहीं होता, न कुछ पाने की चाह। सच्चा ज्ञानी कभी कुछ बनना नहीं चाहता, उसका अस्तित्व तो मात्र होता है। ज्ञान के मार्ग में आकर तो मन के साथ जो कुछ भी चिपका हुआ है, वह सब मिट जाता है।

ना दोस्त रहे ना रहे दुश्मन
दुनिया वालों से क्यों जूझें
उनसे हम दिल को लगाएं क्यों
जो गम के शोलों में फुंके

प्यारे साधको!

किसीको दुश्मन बनाने के लिए पहले दोस्त बनाना अनिवार्य है। परंतु ज्ञानी पुरुष न किसीका दोस्त होता है, न किसीका दुश्मन; वह अजात शत्रु जैसा हो जाता है। दोस्ती और दुश्मनी में उलझना जब बंद हो जाता है तब उसे पूर्ण जाग्रतावस्था कह सकते हैं। इस संसार में क्या हो रहा है? या तो आदमी दोस्ती में उलझ रहा है या फिर राग द्वेष के वश होकर दुनियां वालों से जूझ रहा है। दोनों निरर्थक हैं। ज्ञानी पुरुष कहता है कि आखिर जो दुनियाँ गम की आग में ही फुंकने वाली है, ऐसे लोगों से या ऐसे जहाँ से दिल को लगाना ही बेवकूफी है।

दोस्तो, साक्षी भाव को जगाकर संसार में कोई साधक जब तटस्थ भाव से जीने लगेगा तो इसका अर्थ यह नहीं है कि उसके जीवन में सुख-दुःख नहीं आएंगे परंतु साधक को उस सुख-दुःख की चरम सीमा में मन में जो भाव बनता है उसमें प्रवेश करके वहाँ चित्त को स्थिर

कर देना है। प्रत्येक चरम सीमा मनुष्य को कुछ देर के लिए निर्विचार अवस्था प्रदान करती है। ज्ञानी साधक उसका उपयोग कर लेता है।

न खौफ रहे ना प्यार रहे
ना यार रहे यलगार रहे
हर शय में ख़ुदा का द्वार रहे
इसे मस्त फकीरी कहते हैं।

प्यारे साधको!

अगर आपने इस विधि में उतरना सीख लिया तो आपको न ही किसीका डर रहेगा न ही दुनियादारी से प्यार। न तो इस दुनियां से यारी करने की इच्छा रहेगी न ही किसी से युद्ध। ऐसे साधक के लिए सुख और दु:ख आदि प्रत्येक घटना इश्वर के निकट जाने का एक मार्ग लगता है। हर हाल में, हर दृश्य में वह उस अदृश्य का दर्शन करता है। हर घटना को वह उसकी मर्जी समझकर मस्ती से जीता है। मेरी दृष्टि से यही सच्ची फकीरी है।

या नदिया बनकर बहता है
न तैर रहा ना डूब रहा
जो सबको जीवन देकर के
आदम ईश्वर बन जाता है

प्यारे साधको!

नदी का बहना ही उसका ध्येय है। बहते-बहते ही वह अपने गंतव्य स्थान को प्राप्त कर लेती है परंतु बहती है, बेइरादा। ऐसे ही जागा हुआ साधक संसार रूपी नदिया के सुख-दु:ख रूपी किनारों को छूता हुआ केवल बहता रहता है। न तो वह संसार को जल्दी तैर जाने की चिंता में है, ना ही संसार में डूब जाता है। ऐसे साधक सुख-दु:ख की पराकाष्ठा में भी साक्षी और करुणापूर्ण बने रहते हैं। जिस तरह से नदी

ऊबड़-खाबड़ रास्ते से बहती हुई, सबको कुछ न कुछ देती जाती है वैसे ही ज्ञानी फकीर जीवन के प्रवाह में सहजता से बहता-बहता ईश्वर रूप बन जाता है। इस विधि से गुजरने वाले साधक निर्भय होते हैं। क्योंकि खोने और पाने के भाव से ऊपर उठ गए हैं।

ना गिरने का कोई डर है
ना उठने की कोई ख्वाहिश
हर हाल में जो है खुश-खुशाल
वो ही होता है कामयाब।

दोस्तो, ध्यान विधि में से गुजरने वाला साधक जीवन में आते जाते सुख-दु:ख के ज्वार-भाटा में कुटस्थ की भांति बरतता है। दु:ख में उसे कुछ गंवाने का डर नहीं होता। जब मनुष्य दु:ख में दु:खी होने से मुक्त हो जाता है तो सुख के पार भी अपनेआप चला जाता है। ऐसे साधक को गिरने से कोई शिकायत नहीं होती या उठने की कोई तमन्ना नहीं। ऐसा ध्यानी पुरुष हर हाल में खुश रहता है और जिसने इस कला को सीख लिया वही ज्ञान मार्ग में कामयाब हो सकता है।

प्यारे साधको!

जीवन में सुख आए या दु:ख, दोनों को चरम सीमा तक पहुंचने दो। वैसे भी वह आपके हाथ में नहीं है। दु:ख में बिखर न जाओ और सुख में हर्षोन्माद से स्वयं को बचा लो। संसार चक्र अपना काम करता ही रहता है। इसमें हम बाधा क्यों बनें? उठने दो बवंडरों को, तो कभी ठंडी हवा की लहरों को, अपनी जीवन नौका को स्थिर रखने के लिए जरूरत लगे तो ध्यान के लंगर का उपयोग करो। फिर एक ऐसी स्थिति आएगी कि आप गाएंगे

हम हो गए मस्ताने
मस्ती में डूब कर

हम हो गए मस्ताने
मस्ती में डूब कर
अब तू ही मरे आस
पास नाच झूम कर

मैंने तस्बी को तोड़ा
गीता कुरान छोड़ा
बुत काबा से जुड़ा
मन का नाता तोड़ा
अब रुकना भी नहीं
अब चलना भी नहीं
अब टुटना भी नहीं
अब जुड़ना भी नहीं
.....अब तू ही मरे आस पास नाच झूम कर

मेरे भीतर ही मैंने
मीरा का नाच देखा
इसू मंसूर मूसा
महम्मद साथ देखा
तू जो चाहे तो आजा
थोड़ी मस्ती भी लेजा
मेरी रगरग में खोजा
मेरे दिल में समाजा
.....अब तू ही मरे आस पास नाच झूम कर

लकीरें मिट चुकी हैं
मेरे हाथों की मौला
दरारें भर चुकी हैं
मेरे माथे की मौला
मुकद्दर है बेचार
मुसब्वर है आवारा
"मोहिनी" मुझको
मेरी मस्तीने सवांरा
.....अब तू ही मरे आस पास नाच झूम कर

स्वानंदभाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 153

बाह्यं विषय का आनन्द त्यागी, निजानंद में रहे अनुरागी।
स्वानन्द से परमानन्द पाओ, आत्मा से आत्मा को रिझाओ।

ध्यान विधि - 153

निजानंद में मस्त रहकर
बाह्य विषयों के आनंद का
त्याग कर आत्मा से ही
आत्मा को संतुष्ट रखो।

बाह्य विषय का आनंद क्षणिक है, फिर भी विषय अनेक हैं। जीवन छोटा सा है, आशाएं बहुत बड़ी। अगर सबकुछ अपनी झोली में भरने की कोशिश भी करेंगे तो झोली और समय (जीवन) दोनों कम पड़ जाएंगे। हाथ में केवल पछतावा रह जाएगा। इससे बेहतर है कि स्व में पड़े हुए आनंद को जान लो और अकारण आनंदित होने की कला को इस विधि के द्वारा सीख लो।

प्यारे साधको!

विश्व में अपार विषय हैं। कितने-कितने सुख के साधन हैं परंतु जीवन तो सीमित है। दुन्यवी विषयों में से आनंद लेने बैठोगे तो क्षण जीवी बनना पड़ेगा। क्योंकि हज़ारों हजार विषयों में मन भटकाता रहेगा।

आप कभी गहनों की बड़े शो-रूम में गए हो? वहाँ हीरे भी हैं, सोना भी है, चांदी भी है, और भी बहुत कुछ। जेब में पैसे सीमित हों और सामने चीजें हजार हों। हर चीज आपको आकर्षित कर रही है तो क्या करेंगे? हर चीज को पाने के लिए आप बेताब हो जाएंगे तो क्या होगा आपका? आप पागल हो जाएंगे।

दोस्तो, ऐसा न हो इसलिए आप क्या करते हो? समझौता! मन को मना लेते हो। बहुत कम लेकर दुकान के बाहर आते हैं और बहुत ज्यादा छूट जाता है। दोस्तो, जिन्दगी एक समझौते से ज्यादा कुछ भी नहीं। ज्यादातर लोग समझौते में ही जीवन गंवा देते हैं। समझौता कर लेना और समायोजन से जीना उसमें बहुत फर्क है। अध्यात्म आपके जीवन को समायोजन से जीना सिखाता है और संसार बात-बात पर समाधान। परंतु याद रहे! वह क्षणिक समाधान होता है। वह एक प्रकार

की मजबूरी है, मनोदमन है। समायोजन समझ में से आता है और समझ अध्यात्म से खिलती है। समाधान मजबूरी में से आता है। अथवा स्वार्थ से होता है। उसमें समझ की मात्रा बहुत कम होती है। ज्यादातर तो इस जहाँ में एक मजबूर दूसरे को मजबूर ही करता रहता है और एक स्वतंत्र मानसिकता का मनुष्य कई लोगों को स्वतंत्रता देता है। बंधा हुआ अन्य बंधे को कैसे छुड़ा पाएगा? अंधा अंधे को रास्ता कैसे दिखा पाएगा? एक मुक्त आत्मा असंख्य लोगों को मुक्ति दे सकता है। एक दृष्टिवान मनुष्य कई लोगों का राहबर बन सकता है।

दुनिया के ज्यादातर लोग मन को मारते रहते हैं या मन का मानते रहते हैं। कुछ लोग मन को मना लेने के आदि हो जाते हैं और जीवन गुज़ार लेते हैं।

दोस्तो, तंत्र कहता है कि मन को मारो भी नहीं, मन की मानो भी नहीं और मन को झूठ-मूठ मनाओ भी नहीं। मन आपका ही महत्वपूर्ण अंश है। मन मारकर जीएंगे तो उसके साथ-साथ धीरे-धीरे आप भी मरते रहेंगे। मन की मानकर जीएंगे तो मन आपको खत्म कर देगा। क्योंकि मन के पास बेहद इच्छाएं हैं जो कभी पूरी नहीं हो सकती। और बात बात पर मन को मनाते रहेंगे तो आप मानसिक रूप से नपुंसक हो जाएंगे। ये तीनों स्थितियाँ घातक हैं।

प्यारे साधको!

तंत्र एक चौथा ही उपाय बताता है। वह है धारणा और ध्यान का। तंत्र कहता है कि दो में से एक अति पर चले जाओ। या प्रत्येक विषय से आनंद ले लो अथवा प्रत्येक के पार चले जाओ।

दोस्तो, प्रत्येक विषय में से आनंद उठाने की बात इसके बाद की विधि में आएगी। यहाँ दूसरी अति पर बात चल रही है। तंत्र अति पर जाकर मन का अतिक्रमण कर लेना सिखाता है। यह कठिन नहीं है,

केवल अभ्यास करना जरूरी है। तंत्र के बारे में लोगों के मन में गलत धारणाएं बनी हुई हैं और मान लिया है कि तंत्र गलत है और कठिन है।

दोस्तो, तंत्र के बारे में आपकी बना ली हुई कल्पनाएं छोड़ देंगे तो फिर कठिन बातें आसान होने लगेंगी और कुछ भी बेकाबू नहीं रहेगा।

प्यारे साधको!

आप जब स्वस्वरूप का आनंद लूटने लगेंगे तब कैसा अनुभव होगा? उस अनुभूति के संदर्भ में मुझे कुछ पंक्तियाँ स्फुरी हैं –

फिर दरिया नदिया से मिलता
और पेड़ जड़ों के बल चलता
धरती ऊपर अंबर नीचे
है होश जरा सा तो समझो।

अब बिन बादल बरसात भई
घर में ही बीजली कौंध गई
तारीफ हुई ये तबाही की
है होश जरा सा तो समझो।

यहाँ आब में अंगारे जलते
और ख्वाब सभी सच में ढलते
अब कांटे में भी फूल खिलते
है होश जरा सा तो समझो।

गहराई वहाँ ले जाती है
जहाँ दुनियां नहीं सताती है
और मस्ती बढ़ती जाती है
है होश जरा सा तो समझो।

ना कोई सफीना ना माझी
फिर भी हम जीते हैं बाज़ी

तैराकी तिलस्मी से बहते
है होश जरा सा तो समझो।
ये किरने कहां से आती हैं?
ना दिया है ना बाती है?
जो रस्ता नया दिखाती है
है होश जरा सा तो समझो।
यहाँ बिन बाती उजास भया
पैगंबर मेरे पास भया
अब बिन गोपियन का रास भया
चाहे मानो या ना मानो।
यहाँ चंदा है पर दाग नहीं
यहाँ सूरज है पर आग नहीं
है खुश्बु पर कोई बाग नहीं
चाहे मानो या ना मानो।
अब त्याग नहीं कोई भोग नहीं
कोई अपने पराए लोग नहीं
दिन रैनी योग-वियोग नहीं
चाहे मानो या ना मानो।
यहाँ बिन झांझर झंकार हुई
बिन नाचे थैथैकर हुई
बिन नारा जयजयकार हुई
चाहे मानो या ना मानो।
इन पैरों से पगदंडी को
खुद कंडारा खुद पार किया
उस पार जो जाकर देखा तो

ना पैर रहे ना पगदंडी।
वापस भी चले तो कहाँ चले
देखो दुनिया सुख दु:ख में जले
अब तो है फैसला होंगे फिदा
ना पैर रहे ना पगदंडी।
आहिस्ता आहिस्ता चलकर
हम पहुँचे हैं उनके दर पर
अब बोझ नहीं अपने सर पर
क्योंकि हम ही अब रहे नहीं।
खुद में ही खुदा का दरशन है
कण कण में उसका परसन है
दिल की धक धक से अर्चन है
ये दासतान कुछ अजीब है।

प्यारे साधको!

बांह्य विषय का आनंद क्षणिक है, फिर भी विषय अनेक हैं। जीवन छोटा सा है, आशाएं बहुत बड़ी। अगर सबकुछ अपनी झोली में भरने की कोशिश भी करेंगे तो झोली और समय (जीवन) दोनों कम पड़ जाएंगे। हाथ में केवल पछतावा रह जाएगा। इससे बेहतर है कि स्व में पड़े हुए आनंद को जान लो और अकारण आनंदित होने की कला को इस विधि के द्वारा सीख लो।

धारणा - 154

सर्वानंद भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 154

कोउ दमन नहीं कोई विषय में, क्षोभ से कछु संकोच न मन में।
प्रति विषय से आनन्द भोगी, परमानन्द रूप भये योगी।
काम केन्द्र से ज्ञान केन्द्र की, यात्रा अति पावन है तंत्र की।
सम्यक रूप से कोई जो समझे, शुद्ध अशुद्ध से पर रूप निपजे।।

ध्यान विधि - 154

भोग के द्वारा भोग का
अतिक्रमण करके
परमानंद में प्रवेश करो।

तंत्र के अनुसार अविरोध ही अध्यात्म है। स्वीकार में ही समझ और शांति है। तंत्र ने दमन के स्थान पर शमन को महत्व दिया है। शमन दो प्रकार से होता है। एक तो समझ से और दूसरा विरेचन से। विरेचन में मनोदेहिक आवेग को रास्ता मिल जाता है। दमन में सबकुछ दबा हुआ रहने के कारण साधक में विकृतियाँ पैदा होने की संभावना बढ़ जाती हैं। पागलों की संख्या प्रच्छन्न रूप से बढ़ जाती है। इसी वजह से दमनवादी साधू-संत ज्यादा उदास और क्रोधी दिखाई देते हैं।

प्यारे साधको!

मैंने पिछली विधि में बताया था कि तंत्र दोनों अति से आपको कुछ सिखा रहा है। तंत्र अति के द्वारा चीज़ों का अतिक्रमण कर जाता है। अगर थोड़ी सी सजगता से इस इलम को जान लिया तो आपको एक सही जीवन का आनंद और संतोष मिलेगा। विज्ञान भैरव तंत्र ने दोनों अति की दो विधियाँ बताई हैं। पहली विधि में कहा कि जीवन छोटा है और आशाएं बड़ी हैं। मानवी शक्तियाँ सीमित हैं और भोग के विषय असंख्य। क्या क्या भोगोगे? इससे तो अच्छा है कि निज स्वरूप में जो अमीरस भरा है उसका बोध करके आनंदित रहो। स्वानंद भाव ध्यान से इस सत्य को जान लो कि आप स्वयं ब्रह्म हो।

अब दूसरी विधि में कह रहे हैं कि सर्वानंद भाव ध्यान करो – सबमें से आनंद लूट लो।

प्यारे साधको!

यहाँ समझ के अभाव में आपको तंत्र शास्त्र की विधियों में शायद विरोधाभास नज़र आ सकता है। आभासी विरोधाभास के कारण आप शंकित होकर इस मार्ग के धारणा ध्यान छोड़ दो ऐसा भी हो सकता

है। क्योंकि झूठे संशय के कारण कभी–कभी मनुष्य स्वत: अपना अहित कर लेता है। वास्तव में तंत्र विरोधाभासी नहीं है परंतु समन्वयवादी है। तंत्र प्रत्येक प्रकार की प्रकृति वाले मनुष्य को कुछ न कुछ देना चाहता है। अस्पताल में अनेक प्रकार के उपचार के लिए अनेक दवाईयाँ होती हैं इसका मतलब यह नहीं कि हर दवाई आपके लिए ही है।

तंत्र मार्गीयों ने मनुष्य मन का गहरा अभ्यास किया। उनमें से अनेक प्रकार के मन उपरांत प्रमुखत: दो प्रकार के मन उनके सामने आए। एक त्यागी मन और दूसरा भोगी मन। जिसके पास त्याग की मानसिकता होती है उन लोगों के लिए तंत्र ने उस प्रकार की विधियाँ दी। जिनके पास भोग की मानसिकता है उनके लिए भोग द्वारा ही भोग के पार जाने की विधियाँ दे दी।

भोग विधियों का अर्थ ऐसा नहीं करना है कि तंत्र आपको भोग में डाल रहा है। परंतु इसमें भोग के द्वारा ही भोग का अतिक्रमण करने की विधियाँ हैं। एक विशेष दृष्टि से उन विधियों को समझना पड़ता है अन्यथा मनुष्य अर्थ का अनर्थ कर लेता है अथवा तंत्र के नाम पर गलत पैंतरे आजमाने लगता है। आप ऐसा कुछ न करो इसी वजह से मैं विधि को सीधी–सीधी न समझाते हुए जहाँ मुझे जरूरत लगी है वहाँ थोड़ी भूमिका बाँधकर आपको थोड़े सजग करने के बाद विधियों की ओर जाती हूँ। ताकि बिना समझे ही आप कुछ मनगढ़ंत अर्थ लगाकर विधि को न छोड़ दें या नासमझी में कुतर्क करके कुछ महत्वपूर्ण को चूक न जाएं।

प्यारे साधको!

तंत्र के पास सबके लिए इलाज है। जो मनुष्य आत्मस्वरूप में लीन होने के लिए सक्षम नहीं है, जो मनुष्य अंतरमुखी नहीं हो सकता, जिसके पास एक त्यागपूर्ण मन नहीं है, जिसे भोगों के प्रति आकर्षण

रहता है और वह आकर्षण ही उसके ध्यान में बाधा बन रहा है। तो तंत्र कहता है कि उस हद तक पहुंचो कि आपका भोग ध्यान बन जाए। भोग को ध्यान बना दो। हर प्रकार के क्षोभ, संकोच और मान्यताओं को उखाड़कर फैंक दो। फिर प्रत्येक विषय में से आनंद पाने की कला हासिल करके अंत में परमानंद को उपलब्ध हो जाओ। प्राप्ति के बाद आकर्षण कम हो जाता है। विषय को भोग लेने के बाद मन शांत हो जाता है। उस शांति का लाभ उठाकर उस क्षण में प्रवेश कर लो तथा अनुभव करो कि वहाँ क्या है? फिर भोग परिधि में रह जाएगा और परमात्मा केन्द्र में।

तंत्र के अनुसार अविरोध ही अध्यात्म है। स्वीकार में ही समझ और शांति है। तंत्र ने दमन के स्थान पर शमन को महत्व दिया है। शमन दो प्रकार से होता है। एक तो समझ से और दूसरा विरेचन से। विरेचन में मनोदेहिक आवेग को रास्ता मिल जाता है। दमन में सबकुछ दबा हुआ रहने के कारण साधक में विकृतियाँ पैदा होने की संभावना बढ़ जाती हैं। पागलों की संख्या प्रच्छन्न रूप से बढ़ जाती है। इसी वजह से दमनवादी साधू-संत ज्यादा उदास और क्रोधी दिखाई देते हैं।

तंत्र एक समझदार, आध्यात्मिक, स्वस्थ, प्रसन्न और सजग समाज का निर्माण चाहता है। ऐसे समाज का निर्माण मात्र ध्यान के द्वारा ही संभव है।

एक दूसरी बात, तंत्र कभी ईश्वरीय सृष्टि से विपरीत नहीं जाता है। वह परमात्मा के फैसले और रचना के साथ-साथ चलता है। ईश्वर ने इतनी सुंदर सृष्टि मनुष्य को आनंद मिले इसलिए बनाई है। यहाँ मेरी एक कविता सृष्टिगान की कुछ पंक्तियाँ याद आ रही हैं। दोस्तो, आखिर इस विश्व में सृष्टि के साथ ध्वनि, शब्द, ताल, लय, स्वर सब क्यों बने? मैं कहती हूँ कि मानव उपरांत जीवमात्र की अभिलाषाएं भावनाएं एवं

अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए। पराशक्ति ने इस सृष्टि में प्राण फूंककर मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ बनाया और ब्रह्मांड को प्रसन्नता से भर दिया।

एकांत से तो शांत हूँ
एकाकीपन से अशांत हूँ
मैं वेद हूँ वेदांत हूँ
पर अकेला दिग्भ्रांत हूँ
ब्रह्मा ने मन चिंतन किया
विकल्प सृष्टि का किया
और एक से अनेक का
संकल्प ब्रह्मा ने किया
प्रारंभ में रचे पंचभूत
पुनि सृष्टि का अद्भूत रूप
अवनी अपार अंबर अपार
महासप्त सागर भी अपार
नभचर अपार थलचर अपार
जलचर सचराचर अपार
दिन में रवि की रोशनी
और रैन चंद्र की चांदनी
प्रातः में ऊषा का सिंगार
हर शाम संध्या रूप अपार
लाखों सितारे झिलमिले
बहु वृक्ष बेलि फूल खिले
धरती स्तनों से पर्वतें
जो बहाये नदीयाँ गर्व से
शिशिर वसंत और ग्रिष्म से

वर्षा शरद हेमंत से
बहु सजी सृष्टि सुंदरी
पर क्या ये गूँगी विस्तरी ?
ब्रह्मा भये उद्विग्न से
व्याकुल मन से खिन्न से
अब क्या करूं ? मैं क्या करूं ?
सर्जक मैं विसर्जन करूं ?
नहीं शब्द तो संवाद क्या ?
नहीं नाद तो है स्वाद क्या ?
बिन ध्वनि तो सृष्टि सूनी
सुर ताल बिन मिथ्या बूनी
संसार है कि है स्मशान ?
इसमें न सृष्टा की है शान
अकुलाई सुमिरि सरस्वती
प्रगटी वीणा कर शुभ अति
हे शारदे स्वर शब्द दो
निज साज से आवाज दो
मूर्छित सी मेरी सृष्टि है
तव कृपा स्वर की वृष्टि है
कुछ राग दे कुछ रागिणी
सृष्टि लगे ये सुहागिनी
स्वर ताल दे श्रुति मूर्छना
हम करे तेरी अर्चना
मुस्काई तब श्वेतांबरी
हर्षित वदन से हरेश्वरी

कर कमल से छेड़े जो तार
कण कण मधुर जागी झंकार
शुभ सप्तस्वर आलोक ने
फूंके प्राण सातों लोक में
थी प्रसन्न जो विश्वंभरी
तो जगी सृष्टि सुंदरी
सुर ताल से भइ प्राणवान
और शब्द का उसे हुआ ज्ञान
स्वर षड़ज से भरी सांस वो
और ऋषभ से खुली आंख वो
गंधार से गाने लगी
मध्यम से मुस्काने लगी
पंचम से पूरन यौवना
धैवत से धक् धक् दिल बना
निषाद से लगी नाचने
शब्दो से ओष्ठ लगे कांपने
बोली मधुर स्वर मोहिनी
पुनि शब्द मीठे सोहिनी
शिशु सम शिशिर खिलि शब्द से
मुग्धा वसंत खिले शब्द से
पी पी पपीहे की पुकार
कुहु कुहु कोयल का सिंगार
फैली वसंत फूली वसंत
फागून में भान भूलि वसंत
झूमी वसंत घूमी वसंत

बहुरंग की होली वसंत
फिर ग्रीष्म ने गाया दीपक
वर्षा का जो था उद्दीपक
वर्षा ने फिर छेडा मल्हार
रिमझिम करे शीतल फूहार
घनघोर घन से घनन घन
बरसाये बूँद छन छननन छन
बहु बिजुरिया अति चमकती
कडडड करत नहीं थिर गति
तन मन युं सृष्टि का भीगा
और स्वर्ग धरती पर लगा
छम छम करत नदिया बही
झरनों की झम झम सी लड़ी
थै थै मयुर नर्तन किया
फूल पे भ्रमर गुंजन किया
सागर ध्वनि गंभीर उठी
मानो महा उर्जा जुटी
ऋतु शरद की बानी अलग
हेमंत की हंसती झलक
चर अचर को वाचा फूटी
आहत अनाहत नहीं त्रुटी
षट् ऋतु व्यापे शब्द ब्रह्म
विधि प्रसन्न थे भया सुफलश्रम
वनराज ने की गर्जना
जंगल अभय भयभीत बना

मृग खग उछल उड़ने लगे
पशु पंछी सब गाने लगे
कीडी से कुंजर ने कही
थी बात मन में रम रही
मानव का वेद ध्वनित हुआ
जीवन का अर्थ फलित हुआ
मन की प्रथम थी वो ऐषणा
पर शब्द शक्ति की घोषणा
फिर तो कई सृष्टि बनी
और कई सृष्टा भी बने
अवनी से अंबर तक यहाँ
आये हैं जो वो रुके कहाँ
सर्जन विसर्जन और पुनर-
-सर्जन में कोई ना अमर
पर शब्द शाश्वत रह गया
शब्दों में जीवन बह गया
शब्दों ने जीवन दे दिया
शब्दोने जीवन ले लिया
शब्दों की शक्ति को समझ
खुद को न तू व्यक्ति समझ
जा शब्द से निःशब्द में
क्षमता वो 'मोहिनी' शब्द में

दोस्तो, इस कविता के मर्म को समझकर सर्वानंद भाव ध्यान के द्वारा प्रत्येक विषय के आनंद की क्षणों में उतरकर ध्यानस्थ होकर आप संसार के पार जा सकते हो।

विभाग : 17

संसार की वस्तुओं पर कुछ ध्यान विधियाँ

उर्ध्वजलप्रवाह ध्यान

ध्यान सूक्ति - 155

जल फव्वारे में चित जोड़ो, ऊर्जा को उर्ध्व गति में मोड़ो।
दृष्टा को त्वरित अनुभूति, प्रगटे हृदय में दिव्य विभूति।।

ध्यान विधि - 155

ऊर्ध्वगति के जलप्रवाह में लीन होकर ऊर्जा की ऊर्ध्वगति का अनुभव कर लो।

फव्वारे के सामने बैठकर सबकुछ भूल जाओ। गति के साथ ऊपर की ओर उठते जल का दर्शन करते रहो। धीरे धीरे आपमें से ऊर्जा प्रवाह का उछलना आरंभ होगा। बाद में आपके भीतर का प्रवाह और फव्वारे का प्रवाह दोनों की लय सधने लगेगी। जब ऐसी एकता की अनुभूति होने लगे तब आंख बन्द कर लोगे तो भी चलेगा। फिर तीव्र धारणा करो कि मेरी ऊर्जा ऊपर उठ रही है, मेरी शक्तियों का उर्ध्वगमन हो रहा है। मैं अपार शक्ति का बोध हूँ। ऐसी संकल्पना से आपके रक्त प्रवाह में आते हुए परिवर्तन का आप अनुभव कर पाएंगे। आपके शरीर की छोटी-छोटी नाड़ियों में बहते शक्ति प्रवाह का आपको स्पष्ट रूप से अनुभव होने लगेगा। आप धीरे-धीरे उस गति में खोते जाएंगे, विचार अदृश्य हो जाएंगे। केवल प्रक्रिया घटित होती रहेगी। यह प्रक्रिया ऊर्जा के उर्ध्वीकरण की है।

प्यारे साधको!

एक बात हमेशा याद रखना कि पदार्थ पृथ्वी की ओर जाता है और ऊर्जा आकाश की ओर। पदार्थ का हमेशा अधोगमन और ऊर्जा का उर्ध्वगमन। हाँ! पदार्थ जब ऊर्जा में रूपांतरित होता है तब ऊपर की ओर जाता है और ऊर्जा जब पदार्थ में रूपांतरित होती है तब नीचे की ओर आती है।

इसे ज़रा सरल करके समझे। हवा पदार्थ होने पर भी प्राण ऊर्जा से भरी होने के कारण ऊपर की ओर जाती है परंतु कुछ वायु से बना हुआ जल पृथ्वी की ओर आता है। यह गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत है। बिजली पानी से ही बनती है परंतु जल से वह बिजली के रूप में रूपांतरित होने के कारण वह ऊपर की तरफ चारों तरफ फैलती है। सौर ऊर्जा भी नीचे से ऊपर की ओर उठती जाती है।

कहने का हेतु इतना है कि आप भी ऊर्जा का धोध हैं। आपके पास अगर सही दिशा, गति और दर्शन है तो आप हमेशा प्रगतिशील और विकासशील रहते हैं, वही आपका उर्ध्वगमन है। यह बात मैं एक अदृश्य परंतु अनुभव में आने वाली ऊर्जा की बात कर रही हूँ। वही ऊर्जा जब शरीर में पदार्थ रूप में रूपांतरित हो जाती है तब रस, रक्त,

वीर्य आदि बनकर पृथ्वी की ओर आती है।

योग और तंत्र शास्त्र में एक शब्द बार–बार आता है – उर्ध्वरेतस। जिसकी ऊर्जा का उर्ध्वगमन हो गया हो ऐसे साधक को उर्ध्वरेतस कहते हैं परंतु रेतस शब्द का अर्थ लोगों ने स्थूल ले लिया और वीर्य के अर्थ में घटित कर दिया।

दोस्तो, स्थूल वीर्य तो एक पदार्थ बन गया। वह ऊर्जा का पदार्थ रूप में रूपांतरण है। फिर कोई कहे कि वीर्य को ऊपर चढ़ाने के लिए योग विधियाँ हैं तो यह असंभव है। हाँ, वीर्य का एक अर्थ है – शक्ति। वह शक्ति जब तक स्थूल रूप में है तब तक आप उसका इस्तेमाल किसी भी प्रगतिशील कार्य में, सृजन में अथवा रचनात्मक प्रवृत्ति जैसे कि गीत, संगीत, नृत्य, चित्र, लेखन, मनन, चिंतन, ध्यान आदि में कर सकते हैं। यह सही अर्थ में शक्ति का उपयोग उर्ध्वीकरण और वीर्य रक्षा है। परंतु याद रहे! जब वह शक्ति शरीर की स्थूल धातु के रूप में रूपांतरित हो जाती है तब ऐसे पदार्थ को ऊपर चढ़ाने की बातें बनावटी और बचकानी लगती हैं। ऐसी बातें मूर्खतापूर्ण हैं। पदार्थ में रूपांतरित हो जाने के बाद तो शक्ति किसी भी तरह से नीचे की ओर ही स्खलित होगी। खैर! मुझे यहाँ बात ऊर्जा के उर्ध्वीकरण की करनी है। इस संदर्भ में मेरी अनुभूति में से आई हुई एक अति सरल, सहज उपलब्ध और सुंदर ध्यान विधि की ओर मैं जा रही हूँ; जिसका शास्त्रीय प्रमाण ढूंढने की कोशिश मत करना।

प्यारे साधको!

जैस जल धोध ऊपर से नीचे की ओर आता है वैसे ही मैंने देखा है कि कुछ जगहों पर पृथ्वी में से पानी के फुव्वारे ऊपर की ओर उठते हैं। उस उर्ध्वजल प्रवाह पर ध्यान करने की यह विधि है।

दोस्तो, वैसे तो फुव्वारा ऊपर जाकर भी वापस पृथ्वी की ओर

ही लौट आएगा। परंतु उसमें दो प्रकृियाएं हैं – पहले पृथ्वी की ऊर्जा से फुव्वारे का उठकर ऊपर की ओर जाना और फिर जल पदार्थ के रूप में पृथ्वी पर वापस गिरना।

पृथ्वी के गर्भ में जो फुव्वारा प्रगट होता है वह क्रिया पृथ्वी की ऊर्जा शक्ति के कारण घट रही है। उसमें शक्ति केन्द्र में है, शक्ति के द्वारा जल की उर्ध्वगति हो रही है। दोस्तो, अगर ऐसे कुदरती दृश्य सहज रूप से उपलब्ध नहीं होते हैं तो कोई बात नहीं। आपको अगर इस विधि में रस आ रहा है तो बाग–बगीचे में बिजले के द्वारा जो फुव्वारे लगाए जाते हैं, उनका दर्शन करो। वहाँ बिजली की शक्ति से पानी को धक्का लगता है और पानी ऊपर उठता है। ऊपर उठती हुई हर चीज़ शायद सुंदर लगती है। आप फुव्वारे के सौन्दर्य को पूरे–पूरे ध्यान से देखना।

चले जाओ किसी भी बाग बगीचे में; जहाँ खास दिनों में खास समय पर फुव्वारे चलते हैं। बैठ जाओ उस फुव्वारे के सामने। फोर्स के साथ ऊपर उठते जल प्रवाह को देखते रहो। उसकी उर्ध्वगित में प्रवेश करना आरंभ कर दो। फव्वारे को देखना मत उसे दर्शन बना लो। दर्शन में इतनी तल्लीनता होती है कि मनुष्य दर्शन के वक्त अपने मन, मस्तिष्क और स्मरण का विस्मरण कर देता है।

जल फुव्वारा आपके लिए दर्शन बन जाना चाहिए। एक बार फिर से कहती हूँ कि इस विधि को किसी ध्यान शास्त्र में ढूंढने मत बैठना। यह विधि अगर आपमें बैठ गई और आपका लक्ष्य सिद्ध हो गया, आपका निर्विचार अवस्था में प्रवेश हो गया, आप अगर ध्यान में खो गए – तो समझलो कि यह विधि शास्त्र बन गई। ध्यानी, ज्ञानी पुरुषों के अनुभव में से शास्त्र बनते हैं। केवल शास्त्र में से ज्ञान का अनुभव बहुत कम लोगों को आता है, इस बात को याद रखना। खैर!

प्यारे साधको!

कम से कम तीस दिन तक रोज़ जाकर बैठो फव्वारे के सामने। वैसे तो लोग बच्चों को लेकर फव्वारे दिखाने गार्डन में जाते हैं। कभी-कभी लाइटिंग की वजह से रंग-बिरंगे फव्वारे भी देखने को मिलते हैं। दोस्तो, ऊर्जा के भी कितने रंग वलय हैं! रंगों का पूरा एक विज्ञान है परंतु अभी मुझे रंगों की और रंगों के असर के बारे में बात नहीं करनी है। सारे रंग कुदरत सर्जित हैं। मनुष्य ने तो बिजली और टेक्नोलॉजी का आधार लेकर उन रंगों को थोड़े बहुत फेर-फार के साथ अपने वश में लेकर चीजों को सुंदर बनाने के लिए रंगों का उपयोग किया है। कभी सौन्दर्य प्रसाधनों में, तो कभी कागज़ में, कभी वस्तुओं में, तो कभी गहनों में; परंतु मूल में तो सभी रंग कुदरत का ही विज्ञान है।

इंसान ने तो विज्ञान और बुद्धि के आधार पर उसकी नकल की है। मनुष्य आसमान में चित्रकार बनकर संध्या और ऊषा में रंग भरने के लिए कभी नहीं गया। बेचारा मनुष्य आसमान में मेघधनुष कैसे बना पाएगा? मोर के पंखों में, फूलों की पत्तियों में और उड़ती तितलियों में रंग कैसे भर पाएगा? छोड़ो, मैं फिर से एक बार कहती हूँ कि अभी हमें रंग और रंगों के प्रभाव पर बात नहीं करनी है। अभी तो मुझे केवल उर्ध्व जल प्रवाह ध्यान विधि समझानी है।

दोस्तो, लोग बच्चों को लेकर फव्वारे दिखाने के लिए तो जाते हैं परंतु बच्चे निर्दोष होते हैं और बड़े लोग चालाक होते हैं। वैसे तो बड़े लोग बच्चों को फव्वारे दिखाने के बहाने ख़ुद भी फव्वारे का आनंद लूटते हैं परंतु बच्चों को जताते हैं कि हम आपके लिए गार्डन में आए हैं। आपको फव्वारे दिखाने के लिए आए हैं। ये बच्चों के साथ खेली जाती राजनीति है। बड़ों को बच्चों का आभार मानना चाहिए कि चलो आपकी वजह से रंगीन नजारों का लाभ मिला परंतु चालाक बुद्धि ऐसा नहीं कर

सकती। उसने अपनी सरलता, सहजता और निखालसता खो दी है। इसीलिए तो बड़ों को ध्यान की विशेष आवश्यकता है। ताकि वे फिर से अपनी सहजता और निर्मलता प्राप्त कर सके।

प्यारे साधको!

जब मनुष्य ऐसी सरलता प्राप्त कर लेगा तब जनरेशन गैप का प्राण प्रश्न मिट जाएगा।

दोस्तो, आप ध्यान के हेतु से नहीं परंतु ऐसी ही जब जल फव्वारे को देखते हो तब घर आकर कहते हो कि बहुत मज़ा आया। फव्वारे के सामने कितनी शांति और शीतलता का अनुभव हो रहा था। दूर हटने का मन ही नहीं होता था। दोस्तो, यह सब क्या है? ये सब हैं ध्यान की झलकियाँ। परंतु आजतक आपने कभी सोचा ही नहीं था कि फव्वारे के सामने बैठकर ध्यान किया जा सका है और ध्यान लग सकता है।

ध्यान का अर्थ लोगों ने तो इतना ही लगा रखा है कि मंदिर में अथवा पूजा के कमरे में आंख बंद करके बैठो। परंतु मैं कहती हूँ कि ऐसे भाव में उतरने सीखो कि आप जहाँ बैठो वहाँ मंदिर बन जाए। दोस्तो केवल आंख बंद करके बैठना ध्यान नहीं है। ध्यान है, चित्त का शांति और निर्विचार अवस्था में लौट आना।

प्यारे साधको!

पानी का एक छोटा सा फव्वारा, जो एक इलेक्ट्रीक उपकरण से उसमें बिजली चलाई जाने से उर्ध्वगति को प्राप्त करता है और आप उसे देखकर प्रसन्न और शांत हो जाते हो। तो उस फव्वारे को देखकर जरा सोचो कि मैं कौन हूँ? मैं तो शक्ति का महास्रोत हूँ। आपमें कई इलेक्ट्रीक मोटरों की शक्ति पड़ी है, आप उसे कार्यांवित नहीं कर रहे हैं। आपने अगर अपनी शक्ति को सही मार्ग पर सक्रिय करने का तरीका

जान लिया तो शीघ्र ही उर्ध्वरेतस बन सकते हो। आपके वीर्य अर्थात शक्ति का अध:पतन न होकर उर्ध्वगमन हो सकता है। वह उर्ध्वगमन आपकी शांति, प्रसन्नता, रचनात्मकता आदि से प्रगट भी होता है और दूसरों को भी उसका लाभ मिलता है।

दोस्तो, आपकी ऊर्जा को ईश्वर ने चमड़ी से ढांककर, संभालकर सुरक्षित रखा है। आपकी रग-रग में ऐसे असंख्य फव्वारे उठ रहे हैं परंतु आप उनके प्रति सजग नहीं हैं। इसलिए मैं आपको यह अति सरल ध्यान विधि दे रही हूँ। यह एक सिम्बोलिक विधि है। आप अगर सक्षम हैं और आपके घर में जगह की अनुकूलता है तो एक छोटा सा फव्वारा घर में या आंगन में लगा सकते हैं। उसे स्वयं की ऊर्जा के स्मरण के लिए दिन में किसी भी नियत समय पर चला कर, उसके सामने बैठकर इस ध्यान को कर सकते हैं। अथवा बाग-बगीचे में भी यह ध्यान संभव है।

दोस्तो, फव्वारे के सामने बैठकर सबकुछ भूल जाओ। गति के साथ ऊपर की ओर उठते जल का दर्शन करते रहो। धीरे धीरे आपमें से ऊर्जा प्रवाह का उछलना आरंभ होगा। बाद में आपके भीतर का प्रवाह और फव्वारे का प्रवाह दोनों की लय सधने लगेगी। जब ऐसी एकता की अनुभूति होने लगे तब आंख बन्द कर लोगे तो भी चलेगा। फिर तीव्र धारणा करो कि मेरी ऊर्जा ऊपर उठ रही है, मेरी शक्तियों का उर्ध्वगमन हो रहा है। मैं अपार शक्ति का धोध हूँ। ऐसी संकल्पना से आपके रक्त प्रवाह में आते हुए परिवर्तन का आप अनुभव कर पाएंगे। आपके शरीर की छोटी-छोटी नाड़ियों में बहते शक्ति प्रवाह का आपको स्पष्ट रूप से अनुभव होने लगेगा। आप धीरे-धीरे उस गति में खोते जाएंगे, विचार अदृश्य हो जाएंगे। केवल प्रकृिया घटित होती रहेगी। यह प्रकृिया ऊर्जा के उर्ध्वीकरण की है।

बाद में, जब आंख खोलेंगे तब अनुभव होगा कि आपकी शक्तियाँ उर्ध्वगामी हो गईं। चित्त शांत और मन प्रफुल्लित हुआ। रोएं-रोएं में प्राणों का विशेष संचार और आनंद की अनुभूति होगी। आप स्वयं को बदले-बदले से महसूस करेंगे। अगर आप इस सत्य का अनुभव लेना चाहते हो तो रोज़ तीस मिनिट तक कम से कम तीन महीने उतरते रहो इस ध्यान विधि में और ऊर्जा के उर्ध्वीकरण की अनुभूति को प्राप्त करो।

नौकाविहार ध्यान

ध्यान सूक्ति - 156

सरिता सागर में जब नैया, देखि सुमिरो परम खिवैया।
ध्यान स्थिर होते ही तामे, साधक पहुंचे ब्रह्म दशा में।।

ध्यान विधि - 156

जल में बहती हुई नौका को देखकर एक परम सत्य को समझ लो कि आपकी जीवन नैया की पतवार भी किसी अदृश्य के हाथों में है और परम आस्था से ब्रह्म रूप बन जाओ।

तैरती हुई नौका को देखते रहो.. देखते रहो। जब सारे दृश्य अदृश्य हो जाएंगे और दूर दूर केवल नौका ही दिखेगी। तब आप भी पहले दृश्य फिर धारणा संबंधी विचार और फिर खोती हुई नौका की तरह आपके विचार भी खोते जाएंगे। आप अनुभव करेंगे कि एक महाप्रवाह के साथ आपका अस्तित्व तैर रहा है। जिंदगी इससे ज्यादा कुछ भी नहीं। धीरे धीरे अदृश्य होती नैय्या कहीं दूर किनारे पर लग जाएगी, वैसे ही आपको भी किनारे पर लगना है। वह किनारा मृत्यु का नहीं परंतु चैतन्य का है। उस चैतन्य के महाप्रवाह का बोध ही आपमें शांति बोध को जन्म देगा और किनारे पर लगाएगा। वही आपका परम गन्तव्य स्थान है

प्यारे साधको!

नर्मदा तट स्थित साधना कुटिर में बैठकर कई बार मैंने यह ध्यान किया है। यह भी मेरी अनुभूति में से आई हुई एक ध्यान विधि है।

दोस्तो, आप नौका में तो बैठे होंगे। शायद बैठे न हों, तो नौका को पानी में तैरते तो अवश्य ही देखा होगा।

मनुष्य के मन को बार-बार विषयांतर करने की आदत है। कोई आदमी अगर किसी खास बात पर चर्चा कर रहा हो और बीच में बार-बार विषयांतर करे तो कैसा लगता है आपको? कभी विषयांतर होने के बाद भी वक्ता सजग होकर फिर से मूल विषय पर आ जाए तो ठीक है परंतु मूल विषय को ही चूक जाए, विषय बदलता रहे, पहले एक फिर दूसरा फिर तीसरा और अंत में एक भी विषय को स्पष्ट किए बिना मूल विषय को भूलकर प्रवचन पूरा करके मंच पर से उतर जाए तो कैसा हास्यास्पद लगेगा?

दोस्तो, मनुष्य कुछ ऐसा ही कर रहा है। अपने जीवन में उसे क्या करना है? उसका उद्देश्य क्या है? इसका उसे पता नहीं है। एक के बाद एक विषयांतर करता रहता है और जीवन बीतता रहता है। वह मन

की गुथ्थियों में उलझता रहता है। मन के अनुसार नई नई गुत्थियों में उलझते-उलझते जीवन में विषयांतर होते होते आदमी का जीवन नाटक पूरा हो जाता है। अंत तक उसकी समझ में नहीं आता है कि उसने किस उद्देश्य से जीवन जिया? ना ही किसी और को पता चलता है कि जीवन मंच से उतर जाने तक वह क्या कहना और करना चाहता था?

प्यारे साधको!

मैं नौकाविहार दर्शन ध्यान की बात करना चाहती हूँ। परंतु इसके पहले आपको सजग करने के लिए कुछ बातें करना अनिवार्य है। मैं आपको सीधा-सीधा कह दूंगी कि मेरे अनुभव को आपका अनुभव बनाओ और पानी में विहार करती हुई नौका को दूर दूर से देखते हुए ध्यान में उतर जाओ तो शायद आपके मन में अनेक प्रश्न खड़े हो सकते हैं। आपको संशय हो सकता है कि क्या तैरती हुई नौका को देखकर ध्यान लग सकता है?

प्यारे भक्तो!

दुनियाँ की हर चीज़ ध्यान का विषय बन सकती है। जरूरत है ध्यान की कला को प्राप्त करने की। मैं आपको सीधा-सीधा भी कह सकती हूँ कि जल में तैरती हुई नौका को देखते रहो। परंतु ऐसा कहने के पहले मन के विषय में बात करनी जरूरी है। मन को बार बार विषयांतर करने की आदत है। आप अगर सजग नहीं हैं तो वह आपको ध्यान भंग कराने के लिए आपके चित्त को बार-बार अलग अलग दृश्यों पर घुमाकर विषयांतर करता रहेगा।

मेरे पास काफी भूले-भटके लोग आते हैं। वे शिकायत करते हैं कि पच्चीस साल से ध्यान में उतरने की कोशिश कर रहे हैं परंतु ध्यान लगता नहीं है। आकर बताते हैं कि हम आचार्य रजनीश से मिल चुके हैं,

महेश योगी से मिल चुके हैं, आर्ट ऑफ लिविंग, शिव योग, रामदेव बाबा, ब्रह्माकुमारी सबका अनुभव है परंतु आज तक ध्यान नहीं लगा।

मैं कहती हूँ कि ध्यान कहीं बाहर से नहीं आएगा, वह तो आपके भीतर जन्मेगा। आपको ध्यान नहीं लग रहा है तो उसमें उन लोगों का कोई दोष नहीं है। आप ध्यान करना चाहते ही नहीं थे, आप तो विषयांतर करना चाहते थे। स्थानांतर करना चाहते थे। आप ध्यान को बौद्धिक स्तर पर जान लेना चाहते थे अथवा कोई शोर्टकट चाहते थे, कोई चमत्कार चाहते थे। जिसके कारण अलग अलग लोगों से मिलते मिलते, सच्चे-झूठे सवाल करते करते मुझतक भी पहुंच गए। यहाँ से आप किसी और जगह पहुंच जाएंगे क्योंकि आपका मन आपको भटकाता है। आपकी बुद्धि आपको आध्यात्मिक दिखने का ढोंग कर रही है और आप सबको सुनने के आदि हो गए हैं। परंतु आपको किसीका मानना नहीं है। किसीका न मानो तो कोई बात नहीं परंतु अपने अंतर की आवाज़ सुन सको इतने सजग तो रहो। मन के विषयांतर की आदत में आप इतने उलझ चुके हैं कि अंतर की आवाज़ को अनसुनी कर रहे हैं। जो खुद के भीतर से उठती सत्य की पुकार को दबा देता है वह दूसरों की बात कैसे सुनेगा? कैसे समझेगा? खैर!

ध्यान में आने वालों में मैंने कुछ जिज्ञासु और प्रमाणिक लोग भी देखे हैं। ऐसे लोगों के लिए मैं नई नई ध्यान विधियाँ बता रही हूँ।

प्यारे साधको!

हम बात कर रहे थे नौकविहार दर्शन ध्यान की। विधि तो बिलकुल सरल है। इसमें न कुंडलिनी जगानी है और न ही चक्र भेदन करना है। न पेट फुलाना है, न नाक पकड़ना है। केवल जल में विहार करती हुई नौका को दूर से दूर-दूर तक देखते रहना है। परंतु याद रहे मन को विषयांतर करने की आदत है वह आपके ध्यान में विक्षेप खड़ा कर

सकता है। आपकी इन्द्रियाँ भी आपको विक्षिप्त कर सकती हैं। मन और इन्द्रियाँ सांठ-गांठ करके आपको असफल न कर दें इसके लिए विशेष सावधान रहना।

दूर-दूर तैरती नौका जब दिखाई देगी और आप स्थिर होकर उसपर ध्यान करना प्रारंभ करेंगे कि तुरंत मन पूछेगा कि नौका मैं कौन बैठा है? कितने आदमी हैं? आरतें हैं या पुरुष? कौन चला रहा है? नौका किधर जा रही होगी? इसके उपरांत भी आपकी आंखें दूर दूर के किनारे का माहौल और अन्य दृश्य देखने लगेंगी। मन में कई प्रश्न उठेंगे। ये सब सवाल-जवाब आपको ध्यान नहीं करने देंगे। इसलिए आप सजग रहना विषयांतर नहीं होना चाहिए।

आपको खिवैया, नौका, पतवार, पानी और मुसाफिर सहित एक समग्र दृश्य में प्रवेश करना है। दोस्तो! आपको याद है अर्जुन वाली कहानी? उसे केवल पक्षी की आंख ही दिखाई दे रही थी। अन्य छात्रों को वृक्ष, पत्ते, डालियां, पंछी, जंगल बहुत कुछ दिखाई दे रहा था।

जो एकसाथ बहुत सारे दृश्य देखते हैं, उनका एक निशाना कभी नहीं सध सकता। अर्जुन इसलिए लक्ष्यभेद कर पाता है, क्योंकि उसको जो हासिल करना है वह लक्ष्य बिन्दु ही दिखाई देता है।

दोस्तो, नौकाविहार ध्यान करते समय आपको भी धीरे-धीरे दूर निकलती हुई नौका ही दिखाई देनी चाहिए, अन्य कुछ भी नहीं। इसे कहते हैं चेतना का केन्द्रीकरण। अपनी सजगता के द्वारा अनेक दृश्यों में एक ही दृश्य देखना सीखो। विधि को ध्यान से अनुसरो। आपके ईर्द-गिर्द का माहौल, शांत हो ऐसी जगह पसंद करना नौका विहार दर्शन के लिए।

कम से कम एक महीने के लिए समय निकालो, इस ध्यान के लिए, अपने लिए। दोस्तो, ध्यान की चर्चाएं, ध्यान की बातें, ध्यान की

पुस्तकें और संतों के साथ बैठकर ध्यान विषयक प्रश्न करने से ध्यान प्राप्त नहीं होगा। ध्यान के लिए समय, समग्रता, निरंतरता, उत्साह, एक लक्ष्यता और चाह तथा भीतर ध्यान की प्यास जगनी चाहिए।

दोस्तो, नौका जब जल में विहार करती हुई दूर तक जा रही हो, मात्र नौका के सिवाय कुछ भी न दिखाई दे रहा हो तब भाव करो कि मेरी जीवन नौका भी ऐसे ही चल रही है। उसे चलाने वाला भी एक अदृश्य केवटिया है।

आप अहंकार अथवा कर्ता भाव के हावी हो जाने पर मानते हो कि सबकुछ मैं कर रहा हूँ परंतु यह मात्र एक भ्रम है। इस महाअस्तित्व में सबकुछ पूर्व निर्धारित है। आप इस ब्रह्मांड के अनेक जीवों में से एक हैं। परंतु एक ऐसा जीव जो मनुष्य नाम से पहचाना जाता है। सामान्य जीव-जन्तुओं से आपकी क्षमता ज़्यादा है। प्रमुख अवतार, तीर्थंकर, पयगंबर आदि मनुष्य योनि में पृथ्वी पर इस कारण से उतरे हैं कि मनुष्य योनि अन्य जीवों से विशेष क्षमतावान है। मनुष्य शरीर उनके कार्य में विशेष उपयोगी हो सकता है। बाकी ब्रह्मांड के समग्र जीवों में ब्रह्म अंश रूप से तो बसा ही है। इस समग्र अस्तित्व का नाम ही है, ब्रह्मांड। इस विराट ब्रह्मअंड में से ही सब उत्पन्न होते हैं और समाते हैं। ऐसे अनेको ब्रह्मांडों की बागडोर किसी अज्ञात के हाथ में है। सबकी नौका कोई अज्ञात चला रहा है।

दोस्तो, तैरती हुई नौका को देखते रहो.. देखते रहो। जब सारे दृश्य अदृश्य हो जाएंगे और दूर दूर केवल नौका ही दिखेगी। तब आप भी पहले दृश्य फिर धारणा संबंधी विचार और फिर खोती हुई नौका की तरह आपके विचार भी खोते जाएंगे। आप अनुभव करेंगे कि एक महाप्रवाह के साथ आपका अस्तित्व तैर रहा है। जिंदगी इससे ज्यादा कुछ भी नहीं। धीरे धीरे अदृश्य होती नैय्या कहीं दूर किनारे पर लग

जाएगी, वैसे ही आपको भी किनारे पर लगना है। वह किनारा मृत्यु का नहीं परंतु चैतन्य का है। उस चैतन्य के महाप्रवाह का बोध ही आपमें शांति बोध को जन्म देगा और किनारे पर लगाएगा। वही आपका परम गन्तव्य स्थान है।

घटाकाश प्रवेश ध्यान

ध्यान सूक्ति - 157

घटाकाश में चित्त परोना, महाकाश में स्थिर अस हो जाना।

ध्यान विधि - 157

कुंभ के भीतर के आकाश में दृष्टि और चित्त को स्थिर करके महाआकाश में प्रवेश कर लो।

खाली घड़े में देखते रहो... देखते रहो...। दृष्टि जमते-जमते एक समय ऐसा आएगा कि घड़ा अदृश्य हो जाएगा। आप घड़े में देख रहे हो यह विचार भी अदृश्य हो जाएगा, देखने का इरादा भी अदृश्य हो जाएगा; बचेगी केवल स्थिरता, आकाश और निर्विचार दशा। इस क्षण में प्रवेश होते ही आपको स्वयं के महा आकाश का बोध सहज ही हो जाएगा। आपका महाशून्यता में प्रवेश हो जाएगा। वही मुक्ति की क्षण हैं। उस स्थिरता को बनाए रखने के लिए और महाआकाश के दर्शन तथा अनुभूति के लिए सजगता बनाए रखो। फिर प्रयास छूट जाएगा और आप सहज समाधि को उपलब्ध हो जाएंगे।

प्यारे साधको!

जीवन क्या है? वह एक यात्रा है। वास्तव में तो यह स्थूल से सूक्ष्म की ओर की यात्रा है। वामन से विराट के प्रति प्रयाण है। मेरी दृष्टि से जीवन और जिन्दगी दोनों अलग-अलग हैं। जिन्दगी का अर्थ मैं करती हूँ - "कुछ नियत वर्षों की आयु और उस आयु में होते हुए खेल।" परंतु जीवन का अर्थ है - "सूझ बूझ के साथ, होश और प्रसन्नता के साथ जिन्दगी जीना।" जब ऐसा होगा तभी जिन्दगी ख्वाब में से सच बन पाएगी। संसार असार में से सार बन जाएगा। मिथ्य सत्य बन जाएगा। जब आप जीवन जीना सीख लोगे तब वास्तव में ब्रह्म भी सत्य और जगत भी सत्य हो जाएगा।

जब तक पीड़ा है, दु:ख है, वेदनाएं हैं, असंतोष है; तब तक मन शिकायतों से, अपेक्षाओं से, आशाओं से और इच्छाओं से भरा रहेगा तथा सुख की खोज जारी रहेगी। परंतु जब भीतर बोध घट जाता है कि जिन्दगी स्वयं दु:ख है तब दु:ख मुक्ति के उपाय ढूंढना आरंभ होता है। इसके लिए बोध जागना अनिवार्य है। बोध के बाद ही पृथ्वी आनंदित और संतुष्ट नज़र आएगी। बोध घटने से सत्य का स्वीकार होने लगेगा। शिकायतें अदृश्य होने लगेंगी। बोध सत्य का अनुभव कराता है।

दोस्तो! सत्य सुंदर भी हो सकता है, कुरूप भी। सत्य आपके हिसाब से नहीं चलता। उसका अपना एक अलग हिसाब किताब होता है। आपके मन में प्रश्न उठेगा कि बोध प्राप्ति का उपाय क्या है? मैं कहती हूँ कि दु:ख मुक्ति और बोध प्राप्ति का उपाय है, ध्यान।

ध्यान सुख की खदान है, समझ का द्वार है और स्वयं में एक महासुख है।

आपकी जीवन यात्रा में अगर ध्यान का पड़ाव आ जाए तो संभव है कि वह पड़ाव ही आखिरी मंजिल बन जाए। यात्रिक आप हैं। तय आपको करना है कि आपको यात्रा का रूट कैसा रखना है?

अगर आप ही चाहें कि यात्रा के बीच में ध्यान का पड़ाव न आए तो फिर परिस्थितियों के लिए, और प्रश्नों के लिए आप ही जिम्मेदार हैं। आपको अपनी पसंद की ज़िन्दगी जीने का अधिकार है।

दोस्तो, ध्यान न करना यह कोई गुनाह या पाप नहीं है। परंतु बे-ध्यान, बेबस और अबोध जीवन जीना तथा ऐसे ही मरना यह महापाप है क्योंकि ऐसा जीने में आप अज्ञानवश, अहंकारवश, अजाग्रतिवश स्वयं का अहित कर लेते हैं। स्वयं को पीड़ा दे रहे हो और आपको पता तक नहीं।

वेद व्यास कहते हैं कि दूसरों को पीड़ा देना यह पाप है। मैं कहती हूँ कि स्वयं को अबोधावस्था में रखकर जिन्दगी के विविध मोड़ों में पीड़ा पाना, यह भी पाप है। क्योंकि आप पीड़ित होंगे तो जाने-अंजाने आप के साथ ज़िन्दगी में जो भी जुड़े होंगे वे भी आपकी ओर से पीड़ित होंगे। तो यह तो दुगुना पाप हो गया। ध्यान आपको जगाता है और अपराधों से मुक्त कर देता है। इस मुक्ति के अनेक रास्ते हैं। उन रास्तों को कुछ लोग धारणा, कुछ लोग भाव, कुछ लोग दिव्य संकल्प आदि विविध नामों से जानते हैं। कुछ लोग ज्ञान और भक्ति भी कहते

हैं।

ध्यान की कुछ विधियाँ बहुत छोटी और विचित्र लगती हैं। परंतु वे विधियाँ कोड्स की तरह काम करती हैं। एक छोटा सा कोड पूरी सिस्टम को, पूरे कम्प्यूटर को ओपन करता है। कम्प्यूटर पूरी दुनिया को आपके सामने लाकर रख देता है। एक छोटा सा कोड अंतरिक्ष में उपग्रहों के साथ संपर्क करा सकता है। एक छोटे से कोड से आप बैंक के ए.टी.एम. को ऑपरेट कर सकते हैं।

दोस्तो, ध्यान की प्रत्येक विधि मनुष्य की अंतरचेतना को जगाने में कोड्स का काम करती है। कोड्स में छोटा बड़ा नहीं देखा जाता, उसकी उपयोगिता और महत्व देखा जाता है।

प्यारे साधको!

इतनी भूमिका के बाद अब मैं जा रही हूँ, घटाकाश ध्यान की ओर। विधि कहती है कि घड़ा अथवा किसी भी पात्र के भीतर के आकाश में ध्यान स्थिर करो और शिवरूप को उपलब्ध हो जाओ। कितनी आसान बात लग रही है। एक महान उपलब्धि के लिए विधि एक कोड का काम कर रही है।

जिसके पास ध्यान की समझ नहीं है ऐसा व्यक्ति इस विधि में उतरने को एक बुद्धिहीन क्रिया मानेगा। परंतु वही तो करना है। बुद्धि तो बहुत चल चुकी। बुद्धि सबकुछ करने के बाद भी शांत न हो पाई। उसके तर्क, विचार, और चंचलता बढ़ती गई। तब तंत्र कहता है कि कुछ देर के लिए बुद्धि के द्वारों को बंद कर लेना सीखो।

दोस्तो, कभी कभी ऐसा भी करना चाहिए। ताकि बुद्धि आपको पागलपन तक न पहुंचा दे। ध्यान आपको बुद्धिवादियों में से बुद्ध बना देता है। बुद्धि वाद-विवाद का विषय नहीं है। वह तो मनुष्य के अंतरजगत की एक विशिष्ट शक्ति है। जो प्रतिपल नावीन्य को जन्म देती है। परंतु

आदमी ने स्वार्थवश, मूढता वश, उसे कुंठित कर दिया और एक घिसीपिटी जिंदगी रिपीट होती रहे और बाहरी अस्तित्व टिकाने के लिए आर्थिक समृद्धता बनी रहे तथा अहंकार से मन भरता रहे इसलिए नए नए पैंतरे आज़माने में आपकी बुद्धि बुट्टी है गई है।

साधको! इसी वजह से तंत्र कुछ बुद्धिहीन नहीं परंतु अ-बौद्धिक अथवा पराबौद्धिक अथवा अतिबौद्धिक विधियाँ बताता है। कभी-कभी नोनसेन्स लगती हुई कुछ विधियाँ एक स्पेशियल सेन्स से भरी हुई होती हैं और अतिबौद्धिक लगती विधियाँ वास्तव में आध्यात्मिक हैं।

दोस्तो, यहाँ विधि कहती है कि घड़ा अथवा ऐसे किसी भी खाली पात्र में दृष्टि स्थिर करो। अब प्रश्न नहीं उठाना कि घड़े में क्यों दृष्टि स्थिर करें? अगर खाली स्थान में ही दृष्टि स्थिर करनी है तो आकाश में क्यों नहीं करें? ना ऐसा नहीं करना है।

मैंने आकाश ध्यान की विधि अलग से बताई है। यहाँ जैसा शिव कहते हैं, ऐसा करना है; अगर आपको रस है तो। जो रस नहीं है तो विधि को छोड़ दो। आप कहेंगे कि खाली पात्र के आकाश पर ध्यान करने से क्या होगा?

दोस्तो, अगर आप ध्यानस्थ होंगे तो जो कुछ भी हो रहा है कि जिससे आप परेशान हो वह सब बंद हो जाएगा। इससे बड़ी उपलब्धि क्या हो सकती है? ध्यान कुछ होने के लिए या पाने के लिए नहीं है। परंतु जीवन में जो कुछ भी निरर्थक हो रहा है उन सबसे मुक्त होने के लिए है।

प्यारे साधको!

घड़ा अथवा किसी भी ऐसे खाली पात्र में दृष्टि स्थिर कर दो। उसके भीतर के आकाश में (खाली जगह में) देखते रहो। आप भी एक पात्र ही हो और आप में भी एक आकाश है। घड़े का आकाश छोटा है

परंतु वह महा आकाश का ही एक अंश है इसलिए वह महा आकाश से भिन्न नहीं है और आपका हृदयाकाश भी महा आकाश से भिन्न नहीं है।

दोस्तो! खाली घड़े में देखते रहो... देखते रहो...। दृष्टि जमते-जमते एक समय ऐसा आएगा कि घड़ा अदृश्य हो जाएगा। आप घड़े में देख रहे हो यह विचार भी अदृश्य हो जाएगा, देखने का इरादा भी अदृश्य हो जाएगा; बचेगी केवल स्थिरता, आकाश और निर्विचार दशा। इस क्षण में प्रवेश होते ही आपको स्वयं के महा आकाश का बोध सहज ही हो जाएगा। आपका महाशून्यता में प्रवेश हो जाएगा। वही मुक्ति की क्षण हैं। उस स्थिरता को बनाए रखने के लिए और महाआकाश के दर्शन तथा अनुभूति के लिए सजगता बनाए रखो। फिर प्रयास छूट जाएगा और आप सहज समाधि को उपलब्ध हो जाएंगे।

कम से कम तीन महीने तक रोज़ आधा घंटा इस विधि में से गुज़रते रहो। फिर शायद किसी पात्र की जरूरत नहीं पड़ेगी। फिर घटाकाश के बिना ही आप सीधा महाकाश में निरालंब विहार करेंगे। तर्कपूर्ण मन ऐसा आनंद और शांति नहीं पा सकेगा।

धारणा - 158

गतिलय प्रवेश भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 158

झूले की गति संग में झूलो, केवल मन से कछु न बोलो।
नेत्र मूंद कर भीतर देखो, अति गतिशीलता स्पष्ट ही लेखो।

ध्यान विधि - 158

गहन मौन के साथ झूले की गति के संग में केवल अपनी चेतना को झूलती देखकर आंतरिक गतिशीलता का अनुभव कर लो।

दोस्तो, ध्यान में उतरने के भाव के साथ बैठो झूले पर। धीरे-धीरे झूलना शुरू करो। एक लय को साध लो। आपके पैर भी झूलते वक्त लय में ही रहेंगे। वह लय आपके शरीर के क्रियांवित होने पर भी एक स्थिरता देगी। उस लयबद्धता के विकसित होते ही आपको शांति का अनुभव होने लगेगा। आप झूलने में इतने तल्लीन हो जाओ कि खुद झूलना बन जाओ। फिर आप और झूला भिन्न होते हुए भी एक तीसरी ही प्रक्रिया जन्म लेगी। जिसे हम तन्मयता कहेंगे।

प्यारे साधको!

गति मन का सहज स्वभाव है। गति ऊर्जा का सहज स्वभाव है। गति जीवन का सहज स्वभाव है। गति सारे ब्रह्मांड का सहज स्वभाव है। यहाँ प्रत्येक वस्तु गतिशील है। जड़, चेतन, हवा, पानी..... सब गतिशील हैं। गति ही जीवन है।

प्यारे साधको!

गतिशीलता, यह जीवन धर्म है। यहाँ मेरे अनुभव में से एक छोटी सी ध्यान विधि उतरी है। बचपन से मुझे झूला झूलने का बड़ा शौक रहा है। पाट हो, झूला हो, बगीचे में बच्चों के झूले हों या बरगद के पेड़ की जटाएं परंतु मौका मिलते ही झूलना यह मेरा आनंद रहा है।

दोस्तो! बचपन में मुझे ध्यान की ओर बहुत आकर्षण रहा है। परंतु उसके बारे में कोई खास सजगता नहीं थी। धीरे-धीरे मेरा ध्यान का आकर्षण ध्यान-प्रेम बन गया। वह ध्यान-प्रेम उसकी चरम सीमा पर पहुंचकर समर्पण बन गया। आज ध्यान शिबिर लेना, ध्यान पर लिखना, ध्यान पर बोलना, ध्यान करना-कराना, ध्यान में जीना; बस, यही सब रह गया है। ध्यान मेरा पर्याय जैसा बन गया है।

मैं कहती हूँ कि एक समय भोजन नहीं मिले तो चल सकता है

परंतु मनुष्य को बे-ध्यान जिन्दगी मंजूर नहीं होनी चाहिए।

जैसे-जैसे ध्यान में मेरा रस बढ़ता गया वैसे-वैसे मेरी चेतना जहाँ-जहाँ ध्यान की झलकियाँ मिलती थीं वहाँ- वहाँ स्थिर होती गई। तब मेरा संबंध ध्यान शास्त्र से इतना गहरा नहीं था। न कोई विशेष विधियों से। सीधी अंतर अनुभूतियों की ओर लक्ष्य चला जाता था। जैसे ही ध्यान में प्रवेश होता था कि तुरंत वे बातें मेरी स्मृतियों में संजोई रहती थीं। फिर जिस माध्यम से ध्यान लग जाता था उस माध्यम से बार-बार ध्यान के निकट जाने का अभ्यास जारी रहता था। बात जब स्पष्ट हो गई कि यह कोई भ्रामक स्थिति नहीं है परंतु चित्त की एकाग्र अवस्था ही है, प्रगाढ शांति का अनुभव है तब मैं उसे एक ध्यान विधि के रूप में स्वीकार कर कुछ लिख लेती थी। जिससे दूसरों को भी मैं यह विधि बता पाऊं ताकि यदि वे चाहें तो मेरी विधि में उतर सकें।

दोस्तो, ऐसी ही एक अति साधारण परंतु सुंदर और आनंदप्रद तथा सहजप्राप्य विधि है - झूले पर झूलना। झूले के साथ हमारा पुराना संबंध है। पुनर्जन्म और पूर्वजन्म में जो मानते हो तो आपका जन्म-जन्म का रिश्ता झूले के साथ है। छोटे बच्चे का पलना - यह बचपन का झूला है। माँ बच्चे को जब झुलाती है तब बच्चा थोड़ी देर खेलता, रोता, हंसता धीरे-धीरे निद्रा में चला जाता है। क्यों? बच्चा जब रोने लगता है तब माँ उसे पलने में लेटाकर झुलाने लगती है। क्यों?

दोस्तो, बच्चे के जन्म के पूर्व ही खास कर की भारतीय घरों में पलने की व्यवस्था की जाती है। क्योंकि वह एक ध्यान का माध्यम है। लोगों को शायद पता न हो यह बात अलग है परंतु झूला बच्चों से लेकर बूढ़े तक को एकाग्रावस्था में ले जा सकता है।

वैसे तो आपके इर्द-गिर्द अनेक चीज़ें हैं जिसके माध्यम से आप ध्यान को उपलब्ध हो सकते हैं। परंतु आप उसके प्रति सजग नहीं हैं। जिसकी वजह से आप छोटे-मोटे अद्भुत अनुभवों को चूक जाते हो। इस

चूकने में केवल दृष्टि का अभाव है। कुछ बातें आंखों से देखी जाती हैं और कुछ बातों में आंखों के साथ अंतरदृष्टि का उपयोग करना पड़ता है। परंतु मनुष्य ऐसा नहीं करता। क्या करें? वह इतने पागलपन से घिरा हुआ है कि नज़रों के सामने जो इलाज है वह भी उसे नहीं दिखाई देता।

मैं कहूंगी कि आप जिंदगी में चाहे कितने भी नाम-दाम कमा लो परंतु झूला झूलने का वक्त नहीं निकाल पाए तो आप कुछ दिव्य और मूल्यवान चूक गए हो।

आप जब झूले में बैठते हो अथवा जब बच्चा पलने में सोता है। तब आपके शरीर के भीतर चलती लय के साथ एक बाहरी लय संगति करने लगती है और वह जुगलबंदी आपको एक अलग आयाम में ले जाती है। धीरे धीरे झूले की लय और आपकी लय जम जाने से मन अ-गति में प्रवेश करता है। मन का अ-गति में प्रवेश होना ही ध्यान है और मन का गतिशील रहना संसार।

जब माता बच्चे को पलने में लेटाती है तब बच्चा पहले तो थोड़ी उछलकूद करता है। बिलकुल आपके मन की भांति परंतु धीरे-धीरे झूले की लय के साथ उसके शरीर का तदात्मय हो जाता है। उसका रोम रोम झूलने लगता है। धीरे-धीरे बच्चा शांत हो जाता है और फिर सो जाता है। बच्चा झूले का उपयोग ध्यान के लिए नहीं करता है परंतु उसे कोई झुलाए और वह उसका मज़ा ले और फिर शांति से नींद में चला जाए इसलिए करता है। क्योंकि बच्चे के पास ध्यान का कोई बोध नहीं है। उसका मन इतना निर्मल है कि उसे ध्यान की जरूरत भी नहीं है।

दोस्तो, आपको सो जाने के लिए झूले का इस्तेमाल नहीं करना है। आज का मनुष्य इतना अस्वस्थ है कि कभी-कभी नींद की गोलियाँ लेने पर भी वह सो नहीं पाता है। परंतु झूले पर झूलने की एक साधारण प्रक्रिया अगर मनुष्य को निद्रा में ले जा सकती है तो वह एक बहुत बड़ा

चमत्कार है। दोस्तो, झूलते-झूलते नींद आ जाए तो उसमें कुछ बुरा नहीं है, सो लो, आराम कर लो, ध्यान कभी बाद में करना। परंतु ऐसा न हो कि रोज लय प्रवेश ध्यान के लिए झूले पर बैठो और झूलते झूलते उनिंदापन महसूस करते हुए सो जाओ। अगर रोज ऐसा होगा तो आप बच्चे हो। परंतु बच्चे जैसे निर्दोष नहीं है इसलिए आपको ध्यान की जरूरत है।

दोस्तो, ध्यान में उतरने के भाव के साथ बैठो झूले पर। धीरे-धीरे झूलना शुरू करो। एक लय को साध लो। आपके पैर भी झूलते वक्त लय में ही रहेंगे। वह लय आपके शरीर के क्रियांवित होने पर भी एक स्थिरता देगी। उस लयबद्धता के विकसित होते ही आपको शांति का अनुभव होने लगेगा। आप झूलने में इतने तल्लीन हो जाओ कि खुद झूलना बन जाओ। फिर आप और झूला भिन्न होते हुए भी एक तीसरी ही प्रक्रिया जन्म लेगी। जिसे हम तन्मयता कहेंगे। झूलने की प्रक्रिया में से प्रगटी हुई तन्मयता। जिससे एक लीनता से मिश्र लय चलती रहेगी। आपको केवल इतना सजग रहना है कि आप सो न जाओ। परंतु झूलन क्रिया में खो जाओ।

जब झूलन प्रक्रिया में आप खोते जाएंगे तब शांति और आनंद का अहसास शुरु होगा। मन बिलकुल शांति में चला जाएगा। तब उसे जाने देना। झूले पर झूलने के वक्त योजनाएं, अतीत और निरर्थक चिंताएं सबकुछ छोड़ देना। एकाद घंटे के लिए कोई बातचीत नहीं। किसीसे कोई चर्चा नहीं। न स्वयं के साथ कोई संवाद न अन्य के साथ। किसी भी प्रकार के वार्तालाप को स्थान मत देना। लय के साथ साथ आंख मूंद लेना। आप एक स्पष्ट और दिव्य गतिशीलता का अनुभव करेंगे। जो आनंदप्रद होगा।

वह गतिशीलता ही ब्रह्मगति है। उस क्षण को चूकना मत। अब बुद्धि में प्रवेश करो और अनुभव कर लो कि सत्य क्या है?

रथारूढ़ भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 159

साधक मन से रथ में बिराजो, हिलो डुलो मस्ती में राचो।
तब अद्भुत प्रक्रिया घटत है, चित्त की सब वृत्ति अटकत है।।

ध्यान विधि - 159

तीव्र कल्पना करो कि आप रथ में बैठे हो और रथ दौड़ रहा है, धीरे धीरे चित्त की सारी वृत्तियाँ अटक जाएंगी ।

कम से कम बीस मिनिट तक दोड़ते रथ में आप बैठे हो और जैसा होता है ऐसा समग्रता और प्रमाणिकता से करते रहो। सारे संकोच को झाड़ दो। विधि के अनुसार क्रिया करने में बुद्धि को चंचुपात मत करने दो। आपको इस विधि में उतरते हुए कोई देख लेगा तो पागल भी कह सकता है। इसलिए एकांत में करना अथवा - कोई क्या कहेगा? इसकी चिंता छोड़कर मस्ती से इस ध्यान विधि को करना। वास्तविक यात्रा कर रहे हो ऐसे हिलना-डुलना जारी रखो। एक अज्ञात रथ का आनंद लो।

प्यारे साधको!

आपको शायद अनुभव होगा कि आदमी जब बस में, कार में, ट्रेन में, या किसी भी रोड पर चलते हुए वाहन में मुसाफिरी करता है तब थोड़ी ही देर में उनिंदा सा महसूस करने लगता है। ज्यादातर लोग तो सो ही जाते हैं। क्यों? क्योंकि उसका शरीर धीरे-धीरे वाहन की गति और रिदम के साथ स्थिर होने लगता है।

दोस्तो! मैं कई बार कह चुकी हूँ कि शरीर और मन अलग नहीं है। वाहन की गति से बाहरी और भीतरी लय का अनुसंधान आपको निर्विचार अवस्था में ले जाता है। दोस्तो, पूरा विश्व संगीत से भरा है। प्रत्येक संगीत में मेलोडी की मात्रा कम, ज्यादा अथवा नहींवत् हो यह बात अलग है। परंतु दो चीज़ों के टकराने से एक नाद उत्पन्न होता है जिसे आहत नाद कहते हैं।

दूसरी ओर शरीर के भीतर भी दस प्रकार के नाद लगातार चल रहे हैं। जिसे योग शास्त्र अनाहत नाद कहते हैं। आहत और अनाहत नाद की उत्पत्ति भले भिन्न-भिन्न ढंग से हो परंतु उसके नादत्व में कहीं समानता है। दो नाद ब्रह्मांड में कहीं न कहीं मिलकर एक हो जाते हैं और एक तीसरी ही आवाज अथवा ध्वनि का जन्म होता है। छोड़ो!

मुझे यहाँ ध्वनि संप्रदाय या नाद के बारे में विशेष चर्चा नहीं करनी है परंतु आपको रथारूढ भाव ध्यान विधि की ओर ले जाना है।

लाखों वर्ष पहले शिव ने यह विधि सती को बताई। तब रेलगाड़ी या मोटरकार का युग नहीं था। वह युग रथ और पुष्पक विमानों का था। प्राचीन ग्रंथों में विविध प्रकार के रथों का और गति के अनुसार विविध ध्वजा वाले रथों का वर्णन है। वे ध्वजाएं केवल शोभा के लिए या व्यक्तिविशेष की पहचान के लिए ही नहीं परंतु रथ की गति की द्योतक भी थीं। ध्वजा के प्रतीक से पता चलता था कि रथ कितना वेगवान होगा? किसका रथ हो सकता है? रथी और सारथी कौन होगा? खैर!

विधि कहती है कि ध्यान में बैठकर ऐसी भावना करें कि आप रथ में बैठे हैं। रथ धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा है। कोई भी वाहन हो, आरंभ तो धीरे से ही होता है। फिर धीरे धीरे आयाम बदलते जाते हैं और गति तेज़ बनती है। रास्ता उबड़-खाबड़ हो तो रथ में बैठे हुए मनुष्य का शरीर हालक-डोलक होता है, लड़खड़ाता है और हिचके लगते हैं। रास्ता सीधा सपाट होने पर भी कभी अन्य कारणों से रथ की गति को अचानक अंकुश में लेना पड़ता है। तब शरीर को अलग प्रकार का झटका लगता है। इन सारी स्थितियों में भी एक संगीत और रिदम पैदा होती है, एक विशेष धुन उत्पन्न होती है। वह किसीके चाहने से नहीं बनती। वह अपनेआप बनती बिगड़ती नए-नए रूप में ध्वनित होती रहती है। समग्र सृष्टि में एक ऐसा स्वचालित और स्वयंभू ध्वनि ध्वनित हो रही है। आपके भीतर भी आपके बाहर भी।

दोस्तो, हर जगह एक संगीत है, धुन है, लय है, ताल है। रथ के पहिए या कील की आवाज़ हो, घोड़े की हिनहिनाहट हो, चक्रों का जमीन के छोटे-छोटे पत्थरों या असमान धरती के सीने पर दौड़ना हो अथवा आज की वी.आई.पी. गाड़ियों के इन्जिन की आवाज हो परंतु गियर

(गति) के बदलने के साथ ही संगीत की धुन भी बदल जाती है। आपकी चेतना उस संगीत के साथ कितनी घुलमिल सकती है। उसपर ध्यान निर्भर करता है। एक तबलची गाड़ी की ध्वनि में कौन सा ताल बज रहा है? यह ढूंढेगा। एक मेकेनिक ढूंढेगा कि इन्जिन की आवाज कहाँ डिट्यून हो रही है? गाड़ी का हॉर्न बजने से एक संगीत प्रेमी उसमें कौन सा स्वर बज रहा है उसे ढूंढने की कोशिश करेगा? और एक ड्राइविंग प्रेमी गाड़ी की अच्छी स्पीड और हॉर्न की अच्छी आवाज़ चाहेगा। परंतु ध्यान एक अलग ही चीज़ है। एक ध्यान प्रेमी इन सब चीज़ों का आधार लेकर मुसाफिरी करते वक्त एक अलग आयाम में चला जाएगा। वह आयाम है – निर्विचार अवस्था का।

दोस्तो, इस विधि में शिव पार्वती को निर्विचार अवस्था के द्वारा शांत शिवरूप प्राप्त करने के लिए एक धारणा दे रहे हैं।

प्यारे साधको!

आपको कैसे गुजरना है इस विधि से? इसे ध्यान से समझिए। आपको तीव्र भाव करना है कि आप एक रथ में बैठे हो। रथ कौन चला रहा है? उस विचार में मत पड़ना। क्योंकि मन को कोई नया विषय नहीं देना है। इसीलिए शिव ने भी कोई स्पष्टता नहीं की है। ऐसा भी नहीं कहा कि इस शरीर को रथ समझो। आत्मा को रथी समझो और इन्द्रियों को घोड़े समझो।

दोस्तो, मैं यह सब क्यों कह रही हूँ? मैं यह सब इसलिए कह रही हूँ कि कुछ लोग अपने मन से कुछ अर्थ लगाकर मन में एक चित्र तैयार कर लेते हैं। ऐसी धारणा से बने हुए चित्र वास्तविक धारणा में बाधा बन जाते हैं।

आप भगवद् गीता को जानते हो तो अच्छी बात है परंतु यहाँ ठोक पीटकर गीता का प्रतीक मत बिठा देना। यहाँ एक अलग ही विधि

है। अगर आपको विधि जच रही है तो शिव ने जैसा कहा है, वैसा करो। न जचे तो छोड़ दो।

एक स्थान पर पलाठी लगाकर अथवा अनुकूल आसन में बैठो और तीव्र भाव करो कि मैं रथ में बैठा हूँ, रथ चल रहा है। यहाँ मज़े की बात यह है कि कोई वास्तविक रथ नहीं है। आपको केवल कल्पना करनी है। परंतु हिलना डुलना है, एक वास्तविक रथी की भांति। जैसे कि रास्ते में हिचके लगते हैं तो आप गिरते-गिरते रह जाते हैं। ऊंचे नीचे रास्ते पर शरीर को खास ढंग से संभाव लेते हैं। रथ की गति बढ़ती है तो आपका शरीर भी ज्यादा हिलता है। ऐसे ही आपका हिलना डुलना सबकुछ वास्तविक होना चाहिए। विधि के दौरान नेत्र बंद रखेंगे। शरीर रथ में बैठा है ऐसा समझकर उसे चलायमान करते रहो। शरीर जैसे जैसे हिलता डुलता जाएगा, कभी गिरते गिरते बचेगा, कभी सावधान हो जाएगा, कभी विश्राम का अनुभव करेगा परंतु थोड़ा-थोड़ा हिलता तो जरूर रहेगा। क्योंकि रथ है आधुनिक कार नहीं। लकड़ी के पहिए वाला रथ कितना भी सुविधापूर्ण क्यों न हो वह आपको थका देगा।

प्यारे साधको!

कम से कम बीस मिनिट तक दोड़ते रथ में आप बैठे हो और जैसा होता है ऐसा समग्रता और प्रमाणिकता से करते रहो। सारे संकोच को झाड़ दो। विधि के अनुसार क्रिया करने में बुद्धि को चंचुपात मत करने दो। आपको इस विधि में उतरते हुए कोई देख लेगा तो पागल भी कह सकता है। इसलिए एकांत में करना अथवा - कोई क्या कहेगा? इसकी चिंता छोड़कर मस्ती से इस ध्यान विधि को करना। वास्तविक यात्रा कर रहे हो ऐसे हिलना-डुलना जारी रखो। एक अज्ञात रथ का आनंद लो। आबड़-खूबड़ रास्ते से लेकर हरियाली, हवा, सुवास आदि का भावानुभव करो। खोते जाओ यात्रा में। शरीर को थकने दो। बीस

मिनिट से लेकर एक घंटे तक जैसी आपकी क्षमता।

दोस्तो, आरंभ में एक खेल जैसा लगेगा। धीरे धीरे खेल आनंद बन जाएगा। मन अदृश्य होने लगेगा। तब कौन सोचेगा कि खेल हो रहा है! मन और मति के स्थिर होने से खेल बंद हो जाएगा। आप अचानक निर्विचार अवस्था को प्राप्त होंगे। शरीर एक विशिष्ट लय में खोते खोते मन के साथ उसमें विलीन होना महसूस करेगा।

दोस्तो, मन का समावेश अवस्था में चला जाना ही ध्यान की परिसीमा और सफलता है।

धारणा - 160

भ्रमणक्रियाभाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 160

बालक भांति भ्रमण करो साधो, वेग से देह भाव को त्यागो।
सहसा केवल चैतन्य भ्रमिता, पुनि विश्राम परम पद चित्ता।।

ध्यान विधि - 160

दोनों हाथ फैलाकर देहाभिमान छोड़कर बच्चे की भांति गोल गोल भ्रमण करो, आप अचानक केवल चैतन्य को ही गतिशील पाओगे ।

दृढ़ भाव करें कि पूरे ब्रह्मांड की चेतनाएं, हर पदार्थ और सृष्टि का कण कण मेरे साथ घूम रहा है। घूमते वक्त घूमना ही बन जाओ। भ्रमण ध्यान में इतनी समग्रता के साथ प्रवेश करो कि धीरे धीरे भ्रमण करने वाला अदृश्य हो जाए और केवल चेतना घूमती रहे।

प्यारे साधको!

छोटे बच्चे में और परम ज्ञानी की अवस्था में कोई खास फर्क नहीं होता। फर्क सिर्फ इतना ही होता है कि बच्चा अज्ञानवश बच्चे जैसा करता है और ज्ञानी संसार की असारता को समझ लेने के बाद बच्चे जैसी निर्दोषता में जीता है।

फिर बच्चे और ज्ञानी के बीच में केवल देहिक स्तर पर छोटे बड़े का भेद बना रहता है। मानसिक स्तर पर अनुभव का अभाव और अनुभव के पार जाने का भेद रहता है। परंतु निखालसता, मस्ती और निर्मलता समान होती हैं।

दोस्तो, इतनी भूमिका इसलिए बांध रही हूँ क्योंकि मैं आपको एक ऐसी ध्यान विधि की ओर ले जा रही हूँ कि जहाँ आपको यह विधि एक बच्चे की हरकत जैसी लगेगी। संभव है कि आपके मन में संशय उठे कि ऐसी विधि से क्या फायदा? ऐसे संशय के उठने के पहले ही कुछ बातें मैं आपको बता दूँ तो आपकी ध्यान यात्रा सरल बन जाएगी। आपको स्वयं की ओर से पूरा-पूरा सहयोग मिलेगा। क्योंकि मानसिक संशय की निःशेषता से आस्था और ऊर्जा संपूर्ण रूप से क्रियांवित होने लगती है।

प्यारे साधको!

आपने छोटे छोटे बच्चों को उनके दोनों हाथ फैलाकर मस्ती से गोल गोल घूमते हुए देखा होगा। वे धीरे धीरे घूमना शुरु करते हैं और फिर अपने भ्रमण को एक अति तक पहुंचाते हैं और फिर गिर जाते हैं। वे इतनी समग्रता से घूमते हैं कि उन्हें पूरी सृष्टि घूमती हुई नजर आती है। यह एक अर्थ में भ्रम है और दूसरे अर्थ में परम सत्य। वैसे तो समग्र पृथ्वी घूम ही तो रही है। समग्र अस्तित्व के महाभ्रमण का ही हम परिणाम हैं।

दोस्तो, इस विधि में कुछ ऐसी बातें हैं कि जिसकी ओर आपको विशेष ध्यान देना है। जिस स्थान पर इस ध्यान का आरंभ करते हो वह स्थान खुला और विशाल हो इसका ध्यान रखें। आप जब भ्रमण करें तब हाथ यथासंभव आसमान की ओर रखें। ऐसे वस्त्र परिधान करें जो आपकी भ्रमण क्रिया को वेगवान बनाए। और किसी भी प्रकार के संकोच के बिना भ्रमण कर सकें।

दृढ़ भाव करें कि पूरे ब्रह्मांड की चेतनाएं, हर पदार्थ और सृष्टि का कण कण मेरे साथ घूम रहा है। घूमते वक्त घूमना ही बन जाओ। भ्रमण ध्यान में इतनी समग्रता के साथ प्रवेश करो कि धीरे धीरे भ्रमण करने वाला अदृश्य हो जाए और केवल चेतना घूमती रहे।

दोस्तो, नवरात्रि आदि पर्व में होते हुए गरबे इस ध्यान का ही थोड़ा रूपांतरित स्वरूप है। परंतु आज के मनुष्य को इस विधि का बोध नहीं है। आज के गरबे ध्यान न रहकर फैशन परेड और स्वच्छंदता का निमित्त बन गए हैं। उनमें से साधना और शक्ति उपासना का भाव खो गया है। कुछ अनावश्यक बातें कुरूपता के साथ बाहर आ रही हैं। छोड़ो! मुझे बात गरबे की नहीं करनी हैं परंतु बात निकली है तो इतना जरूर कहूँगी कि आज भी हजारों युवक युवतियाँ गरबे के नाम से

पागल हो रहे हैं। गरबे का इतना आकर्षण होने का मूल कारण है कि गरबे में घूमते वक्त तल्लीनता आ जाने से कुछ देर के लिए चित्त वृत्तियों का शांत हो जाना, अपूर्व आनंद का अनुभव होना, स्वयं में अपार ऊर्जा का बोध होना और सहज ही ध्यान को उपलब्ध हो जाना।

दोस्तो, साधारण मनुष्य के पास इस अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए भाषा नहीं होती। परंतु संगीत के साथ घूमना उसके लिए ध्यान बन जाता है। समझ के अभाव में वह एक मूर्छायुक्त ध्यान फिर भी एक साधारण विधि भीड़ में रहते हुए भी योग की सर्वोत्तम ऊचाई तक पहुंचा सकती है। इसलिए लोग गरबे में इतने उत्सुक हैं। परंतु टाइट जीन्स और टीशर्ट पहनने वाले लोगों से आप पूछेंगे कि नवरात्रि में खुला पायजामा, कुर्ता या धोती पहनकर गरबे में आधी पौनी रात तक क्यों घूमते रहते हो? तो वे इतना ही जवाब देंगे कि यार, इट इस सेलीब्रेशन। हमें खूब मज़ा आता है। दोस्त, साल में एक बार तो रिफ्रेश होने का मौका मिलता है। तो उसका आनंद लेते हैं।

बात बिलकुल सही है। उन्हें ध्यान व्यान का कुछ खास पता नहीं चलता परंतु वे अंजाने में ध्यान ही कर रहे हैं। ध्यान में उतरने के बाद उन्हें पता नहीं है उनका गरबे में नाचना एक ध्यान ही है। क्योंकि साधारण मनुष्य मेडीटेशन को एक कठिन प्रक्रिया मानते हैं और कुछ लोगों ने ध्यान को बहुत भारी बना दिया है। उन लोगों ने मेडीटेशन और योग के साथ बड़ी बड़ी शर्तें एवं शब्दों को जोड़ दिया है। फ्रीडम चाहने वाले आज के टीनेजर्स और कॉलेजियन्स धर्म के नाम पर बताई हुई कुछ इम्प्रेक्टीकल बातों का अनुसरण नहीं कर सकते। वे लोग आज के तथाकथित बाबाओं से ज्यादा प्रमाणिक तथा वर्तमान में जीने वाले हैं।

नवरात्रि के गरबे में और अन्य प्रसंगों में रास गरबे में नाचने वाले रीफ्रेश और रीचार्ज हो जाते हैं। घूमने में ऊर्जा का खर्च भी होता है

और ऊर्जा उत्पन्न भी होती है।

दोस्तो, आपने सूफी संतों को अगर नाचते हुए देखा हो तो वे भी बच्चों की तरह घूमते हैं। आंखें बंद हाथ आसमान की ओर। आसमान की ओर से मानो ऊर्जा याच रहे हों और सफेद, हरे या काले पोषाकों में बड़ी भावपूर्णता से उसका भ्रमण ध्यान चलता है जो दरवेश ध्यान नाम से भी जाना जाता है।

दरवेश ध्यान वैसे तो अरबी परंपरा में से आया है, ऐसा लोग मानते हैं। परंतु मैं कहती हूँ कि जो लोग विज्ञान भैरव की पुरातन ध्यान विधियों को नहीं जानते है वे भ्रमण ध्यान को दरवेश ध्यान कहते हैं परंतु वास्तव में तो यह विधि शिव से चली आ रही है। समय के साथ विविध विधियाँ विविध स्थानों पर पहुंचकर विविध नाम से प्रकाश में आईं।

एक बात तो है! सूफी संतों को संगीत के साथ घूमते घूमते ध्यान करते हुए देखना बड़ा दर्शनीय लगता है। तो दोस्तो, अब आप समझ गए होंगे कि विधि में कैसे उतरना है? अगर आपको विधि जंच गई है। तो एक बार फिर से बचपन की ओर लौट आओ। खुले स्थान या विशाल कमरे में बच्चे की तरह दोनों हाथों को फैलाकर आंखें बंद करके गोल गोल घूमना शुरु करो। पांच मिनिट से लेकर आधे घंटे तक करते रहो। आरंभ में चक्कर आ सकते हैं। समय के रहते धीरे धीरे आपकी क्षमता विकसित होती जाएगी। इसमें किसी संगीत या ध्वनि की जरूरत नहीं है। तीन महीने के बाद आप स्वयं को एक अलग मनुष्य अनुभव करेंगे। आप विशेष प्रसन्न, विशेष चेतना पूर्ण, विशेष ऊर्जावान, आनंदित, मस्तिभरे और निर्विचार हो जाएंगे। यही जीवन की सर्वोत्तम उपलब्धि है। और यही परमात्मा का अनुभव है।

व्यायाम ध्यान

ध्यान सूक्ति - 161

ध्यान बने व्यायाम तो सुखकर, साधक सम्यक श्रम अतिहितकर।।

ध्यान विधि - 161

प्रत्येक व्यायाम को ध्यान बनाना सीखो तो श्रम से भी आध्यात्मिक कल्याण होगा /

मैं कहती हूँ कि व्यायाम के दौरान तो अ-मन स्थिति का अनुभव तो होता ही है परंतु सम्यक व्यायाम के बाद शांति से लेटने से हृदय निरव स्थिति और प्रसन्नता का अनुभव करता है। भीतर के सारे कोलाहल शांत हो जाते हैं। शरीर में फुर्ति और विशेष चेतना के संचार का अनुभव होता है। पसीने के द्वारा शरीर की अशुद्धियाँ बाहर निकल जाने से एक विशेष शुद्धि का अनुभव होता है। चमड़ी के छिद्र खुलकर सक्रिय होते हैं जिससे विशेष जोश तथा शक्ति का अनुभव होता है।

प्यारे साधको!

दौड़ना, उछलना, कूदना अथवा किसी भी प्रकार का व्यायाम अगर आप चाहें तो ध्यान बन सकता है। दोस्तो! साधारण चलने-फिरने की क्रिया को व्यायाम नहीं कह सकते। व्यायाम में व्यायाम का एक खास उद्देश्य होता है। व्यायाम में मनुष्य का मन और शरीर एक विशेष आयाम में मोड़ ले लेता है। तब विचारों की गतिविधियाँ धीमी हो जाती हैं क्योंकि सारी ऊर्जा व्यायाम के प्रति मुड़ी होती है। आपकी समग्र ऊर्जा का व्यायाम के प्रति केन्द्रित हुए बिना पूर्ण व्यायाम असंभव है। प्रत्येक व्यायाम के लिए दृढ संकल्प शक्ति की अनिवार्यता है।

व्यायाम के दो प्रकार हैं। एक स्वाभाविक व्यायाम और दूसरा विशेष व्यायाम। स्वाभाविक व्यायाम के भी दो प्रकार हैं। जिसमें एक घरेलू व्यायाम, जो कुछ व्यवसायलक्षी कार्यों में अथवा घर के काम काज करते हुए हो जाता है। घर के संपूर्ण कार्यभार को वहन करने वाली ग्रहणी को किसी विशेष व्यायाम की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि पूरे परिवार के कपड़े धोना, बर्तन मांजना, रोटी बेलना, पूरे घर की साफ सफाई इत्यादि

कामों में सहज श्रम हो जाता है। ऐसी स्थिति में उन्हें किसी विशेष व्यायाम की जरूरत नहीं रहती। दिन-भर मजदूरी करने वाले लोग इतना श्रम करते हैं कि उन्हें भी विशेष व्यायाम की जरूरत नहीं रहती।

कुछ लोग स्पर्धाएं जीतने के लिए कठिन व्यायाम करते हैं। परंतु दो में से किसी भी प्रकार का व्यायाम ध्यान नहीं बन सकता। क्योंकि एक का लक्ष्य मेहनत-मजदूरी या घर की रखवाली है तो दूसरे का उद्देश्य मेडल जीतना या नाम कमाना है। ऐसे लोगों के पास ध्यान की कोई धारणा ही नहीं। वहाँ केवल धन अथवा कर्म लक्ष्य है।

नि:स्वार्थ भाव से परिवार की शांति और सुख के लिए किसी भी प्रकार की अपेक्षा किए बिना पूरे गृह कार्य की जिम्मेदारी वहन करने वाली गृहणी वास्तव में कर्मयोगी है। किसी भी व्यक्ति का सच्चा कर्मयोगी होना अच्छी बात है। परंतु ध्यान एक अलग ही अवस्था है। कर्म अगर योग की ऊंचाईओं को छूने लगे तब कर्म भी ध्यान बन सकता है। परंतु ऐसा बहुत कम किस्सों में होता है।

वैसे तो शांति प्राप्त करने के लिए अनेक अनेक योग हैं। जैसे कि भक्ति योग, ज्ञान योग, कर्म योग आदि। परंतु आज के युग में ध्यान-योग की विशेष आवश्यकता है। क्योंकि तकनीकी विकास, स्पर्धात्मक जीवन शैली, मनुष्य का महात्वाकांक्षी स्वभाव तथा वैज्ञानिकी जादू के कारण आज के मनुष्य को उपकरणों के साथ भागने के लिए मानसिक कसरत ज्यादा करनी पड़ती है और शारीरिक श्रम खो रहा है। धीरे धीरे शारीरिक श्रम की आदत छूट जाती है। ऐसी स्थिति में शरीर स्थूल और मस्तिष्क तनावपूर्ण रहता है।

आज बढ़ी हुई सुविधाओं के कारण मनुष्य का शरीर आराम का अनुभव कर सकता है परंतु असीम इच्छाओं को पूरी करने का लालच और समय के साथ भागने के स्वभाव ने अनेक मनोदेहिक रोगों को जन्म दिया है। मोटापा, अपच, डायाबिटीज़, नुकसानकारक कोलेस्ट्रोल का बढ़ना और अनिद्रा जैसे अनेक रोगों का भोग आज का मनुष्य बन चुका है। जिसे हम युवा पीढ़ी कह रहे हैं वह अकाल वृद्ध हो रही है। आने वाली पीढ़ी को अनजाने में ही वह कुछ मनोदेहिक रोग रक्त में दे रही है। जिस वजह से विश्व की भावी पीढ़ी साक्षरज्ञान, सायन्स या टेक्नोलोजी में भले कितनी भी बड़ी उड़ान भर ले फिर भी स्वास्थ्य की दृष्टि से ज्यादा कमज़ोर साबित होगी। मनुष्य को अगर इस खतरे से बचाना है तो अब व्यायाम को ध्यान की तरह लेना अनिवार्य है।

व्यायाम दो हेतुओं से हो सकता है। एक तो शरीर को चुस्त और स्वस्थ रखने के लिए और दूसरा फिज़ीकल फिइटनेस के साथ साथ आंतरिक शांति और स्थिरता के लिए।

प्यारे साधको!

ज्यादातर लोग तो शरीर चुस्त, सुडोल और सुंदर दिखे इसलिए ही व्यायाम करते हैं। सुंदर दिखना, शरीर का सुडोल रहना यह अच्छी बात है परंतु मन की शांति के बिना सुन्दर शरीर केवल दूसरों को आकर्षित कर सकता है, आप भी थोड़ा हल्कापन महसूस करते हो परंतु प्रसन्नता का अनुभव नहीं हो, जीवन में आती हुई चुनौतियों का शांतिपूर्ण मुकाबला करने की क्षमता न हो, जीवन के चढ़ाव उतारों में स्थिर रहने की कला न हो तो देह लालित्य किस काम का?

आजकल पतले दिखने की फैशन चल पड़ी है। परंतु इस फैशन का अनुशरण करने वाली युवा पीढ़ी ज्यादा से ज्यादा तनावग्रस्त और अशांत है।

मैं कहती हूँ कि शरीर के साथ साथ अंतरजगत भी स्वस्थ, शांत और सुंदर होना चाहिए। यह तब होगा कि आप जब व्यायाम को ध्यान की अवस्था तक ले जाओ। आपका व्यायाम केवल शारीरिक न रहकर एक आध्यात्मिक विधि बन जाए। एक ध्यान विधि बन जाए। परंतु इसके लिए आपको व्यायाम के प्रति अपनी दृष्टि बदलनी पड़ेगी, आपका अभिगम बदलना पड़ेगा। व्यायाम को केवल शारीरिक कसरत नहीं समझते हुए उसके सूक्ष्म लाभ भी जानने पड़ेंगे।

दोस्तो! आप जब व्यायाम में तल्लीन हो जाते हो तब आपके मन की दौड़ थोड़ी देर के लिए रुक जाती है। आप व्यायाम को अगर ध्यान बनाना चाहते हो तो जिस क्षण मन की गति शांत होने लगे, विचारों की भीड़ कम होने लगे; उस क्षण को देखने की कला विकसित करनी पड़ेगी। तभी आप क्रिया में भी अक्रिया अवस्था का अनुभव कर पाएंगे और यही क्षण ध्यानस्थ होने की है। ऐसे क्षण में शरीर विशेष सक्रिय होगा परंतु चित्त निर्विचार।

दोस्तो! शरीर स्थूल है, मन सूक्ष्म है। परंतु मन की गति शरीर से हजारों गुनी तेज़ है। आप जब शरीर को एक विशेष आयाम में डाल देंगे तब मन की गति खंडित होगी। जब आप पूरी तरह से व्यायाम में डूब जाएंगे तब मन की भागदौड़ में विक्षेप आएगा। क्योंकि मन संकल्प विकल्प करने के लिए और उस संकल्प विकल्प को आकार देने के लिए वह शरीर का उपयोग करता है। मैं बार–बार कहती हूँ कि प्रत्येक मनुष्य

मनोदेहात्म है। वह मन, शरीर और आत्मा का जोड़ है। शरीर जब व्यायाम में व्यस्त हो जाता है और अंतर प्रसन्नता का अनुभव करता है तब वहाँ मन की चालबाजियाँ ज्यादा काम नहीं आती। तब विचारों के जाल बुनने के लिए मन को ऊर्जा ही नहीं मिलती। इसलिए वह कमजोर पड़ जाता है। और इसका शीघ्र लाभ व्यायामकर्ता को मिलता है।

मन की ओर से खड़े होते विचार विघ्न मनुष्य को काफी कमज़ोर बनाता रहता है। बार बार डराता रहता है। अकारण चिंताएं कराता है। वास्तव में प्रश्न इतने बड़े नहीं होते कि मन उसकी जितनी चिंता ले लेता है। हाँ! याद रहे। बड़े बड़े प्रश्नों को मन सुलझा भी नहीं सकता। वे तो चेतनाशक्ति और आत्मबल से ही सुलझते हैं। मन का काम तो है किसी न किसी विषय को पकड़कर प्रतिपल व्यवधान खड़ा करते रहना। वास्तव में प्रश्नों का समाधान मन के पास से मिलता ही नहीं है। सम्यक समाधान तो मनुष्य की अंतरदृष्टि, योग्य पुरुषार्थ और शुद्ध प्रज्ञा में से आते हैं।

खैर! मैं यह कहना चाहती हूँ कि आप व्यायाम को केवल एक शारीरिक क्रिया या श्रम का विषय मत बनाओ। उसे एक खेल की भांति लो। उसका आनंद लो ताकि थोड़ी देर के लिए मन की भागदौड़ से आपको छुटकारा मिले। दोस्तो! दौड़ना, उछलना, कूदना, तैरना आदि प्रक्रियाओं में आप जब प्रसन्नता का अनुभव करने लगगें तब क्रिया गौण बन जाएगी और ध्यान ज्यादा। क्योंकि ध्यान आनंद है, ध्यान शांति है, ध्यान प्रसन्नता है, ध्यान अ-मनी अवस्था है, ध्यान निर्विचार स्थिति है।

दोस्तो! मैं कई बार कहती हूँ कि केवल आंखें बंद करके बैठना ही ध्यान नहीं है। ध्यान के अनेक अनेक प्रकार हैं, अनेक अनेक विधियाँ हैं और आप प्रत्येक विधि के द्वारा एक अवर्णनीय और परमशांत अवस्था

को प्राप्त कर सकते हैं। उन अनेक विधियों में से आप व्यायाम और खेलकूद को भी ध्यान बना सकते हैं।

खेलकूद, तैरना, जोगिंग, रनिंग में ध्यान के उपरांत आरोग्य विषयक लाभ विशेष रूप से मिल सकते हैं। सम्यक व्यायाम के कारण शरीर की अंत:स्त्रावी ग्रंथियाँ हकारात्मक रूप से सक्रिय होती हैं। जिससे शरीर और मन के लिए लाभकारी रासायणिक प्रक्रिया घटती है। प्रमाद दूर होता है, शरीर में फुर्ती आती है, चयापचय क्रिया सुधरने से शरीर के अन्य तंत्रों को भी उसका फायदा मिलता है। प्रवृत्ति के अभाव में निष्क्रिय शरीर और मस्तिष्क मन के द्वारा पुनुरावर्तित होती रहती बातों का शिकार बनता है। जबकि व्यायाम अथवा खेलकूद में देह और मस्तिष्क प्रफुल्लित रहते हैं, मन के प्रति लक्ष्य नहीं जाने से मन को ऊर्जा नहीं मिलती। मन के द्वारा दोहराती रहती फालतू बातों के बुरे असर से शरीर और मस्तिष्क बच सकता है।

दोस्तो! मैं कहती हूँ कि व्यायाम के दौरान तो अ-मन स्थिति का अनुभव तो होता ही है परंतु सम्यक व्यायाम के बाद शांति से लेटने से हृदय निरव स्थिति और प्रसन्नता का अनुभव करता है। भीतर के सारे कोलाहल शांत हो जाते हैं। शरीर में फुर्ति और विशेष चेतना के संचार का अनुभव होता है। पसीने के द्वारा शरीर की अशुद्धियाँ बाहर निकल जाने से एक विशेष शुद्धि का अनुभव होता है। चमड़ी के छिद्र खुलकर सक्रिय होते हैं जिससे विशेष जोश तथा शक्ति का अनुभव होता है।

पर्याप्त श्रम के कारण गाढ निद्रा प्राप्त होने से ताज़गी का अनुभव होता है तथा दैनिक कार्य बिना थके सहजता से सम्पन्न होते हैं। व्यायाम के कारण प्राप्त होती गहरी नींद की वजह से उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है

और सम्यक विचारणा की शक्ति बढ़ती है। जिससे मनुष्य में उचित निर्णय लेने की क्षमता आती है। यही विशुद्ध प्रज्ञा का प्रमाण है। इसलिए मैं कहती हूँ कि व्यायाम को आध्यात्मिक दृष्टि से लो। केवल शारीरिक कसरत की दृष्टि से नहीं।

प्यारे साधको!

अब आईए विधि की ओर। इस ध्यान विधि को सबसे पहले तो हलके जोगिंग से या हल्की रनिंग से शुरू करो। जिससे बॉडी वोर्म अप हो जाएगी। फिर धीरे धीरे निश्चित व्यायाम में प्रवेश करो। आपकी क्षमता के अनुसार श्रम को बढ़ाते जाओ। मैं फिर से एक बार कहती हूँ कि इसे आनंद की तरह लेना है, खेल की तरह लेना है परंतु एक अस्पर्धात्मक खेल। जहाँ हार जीत का तनाव नहीं है। जिससे मन और मस्तिष्क कोई चिंता नहीं लेगा।

अगर व्यायाम की आदत नहीं है तो आरंभ में शरीर और मन व्यायाम को नकारेंगे। व्यायाम से पलायन करेगा, व्यायाम न करने के बहाने बना लेंगे। परंतु शरीर और मन को धीरे–धीरे व्यायाम के लिए तैयार करो।

प्यारे साधको!

जैसे हम किसी भी मोटर कार को सीधे टॉप गियर में नहीं डालते। पहले उसे न्यूट्रल करके फिर पहले.. दूसरे.. तीसरे..... ऐसे गति बढ़ाते हैं। वैसे ही जब आपको व्यायाम का अभ्यास नहीं हो तब आपके मन को पहले न्यूट्रल करना पड़ेगा। मानसिक प्रमाद को हटाना पड़ेगा। आपको इस न्यूट्रल गियर में इतना ही करना है कि न शरीर को आलस करने में सहयोग करना है और न ही व्यायाम का सीधा बोझ डाल देना है।

पहले तटस्थ होकर सोचना है कि क्या उचित है? आपकी चेतना में से तुरंत ही जवाब आएगा कि व्यायाम हितकर है। चित्त का तैयार होते ही व्यायाम का धीरे धीरे आरंभ कर दो। दस मिनिट, बीस मिनिट, आधा घंटा... एकाध महीने में व्यायाम का समय बढ़ाते जाओ। संभव है तो कुदरती वातावरण, अच्छी कम्पनी और संगीत का सहारा लो। परंतु आपका लक्ष्य शांति में जाना है, शोर में नहीं; इसे याद रखना। व्यायाम के कुछ ही दिनों में आप शरीर को लचीला महसूस करेंगे। यहाँ व्यायाम को मेहनत नहीं परंतु साधना समझो। उसके प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण रखो क्योंकि शरीर साधन है। साधन साधना का माध्यम है। याद रहे आप साधना के लिए साधन को सम्भाल रहे हो। साधन को ठीक कर रहे हो।

मंदिर में बैठे हुए भगवान को ज्यादा समय तक सुरक्षित रखना है तो मंदिर को ठीक रखना पड़ेगा, इस सत्य को समझकर स्वीकार कर लो कि देह-मंदिर प्रभु का निवास है। व्यायाम के द्वारा आप निवास की मरम्मत कर रहे हो। धीरे धीरे व्यायाम बढ़ाओ। मन की फालतू गतिविधियाँ अपनेआप अदृश्य होने लगेंगी और प्रसन्नता बढ़ेगी।

इस विधि के अन्तिम सोपान में पसीने से तर बतर शरीर के साथ जमीन पर लेट जाओ, गहरी सांसे लो, निर्विचार अवस्था का अनुभव करो। आपको पता चलेगा कि आप शरीर और मन दोनों से पर हैं।

मैं कहती हूँ कि जो दोनों से पर है वही आप हैं। यह अनुभव का क्षण ही व्यायाम ध्यान की सार्थकता का क्षण है। बीस पच्चीस मिनिट तक आंखें बंद रखकर पड़े रहो। नींद आ जाए तो चिंता मत करना। जागे हुए हैं तो जागते रहो। वह जाग्रति परम जाग्रति होगी। जब ऐसा होगा तब वे क्षण समाधि से भिन्न नहीं होंगे।

चक्रगति प्रवेशभाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 162

पवन चक्र की पंख की गति में, जब अदृश्य दृश्य हो अति में।
उसी वेग में करी प्रवेशा, साधक स्थिर बनो सविशेषा।।

ध्यान विधि - 162

पंखा अथवा ऐसे किसी भी गतिशील चक्र में चित्त को स्थिर करके परम स्थिरत्व दशा का अनुभव कर लो।

एकांत में शांति से बैठकर लगातार चलते हुए पंखे को देखते रहो। उसकी गतिशीलता बढ़ने के साथ पंखे के पंख अदृश्य हो जाएंगे और आपको केवल गति और हवा का अनुभव होगा। धीरे धीरे उस गति के साथ अपनी चेतना को घूमने दो।

प्यारे साधको!

पता नहीं ऐसा क्यों? परंतु मनुष्य के पास जितने सुख के साधन आए, उतना ही वह अस्थिर होने लगा, अस्वस्थ होने लगा। आज का मनुष्य स्थिर-चित्त होना चाहता है परंतु नहीं हो सकता है। उसके जीवन में कोई न कोई ऐसी घटना घटती है कि वह बार बार स्थिर होकर बार बार अस्थिर हो जाता है। प्रत्येक आदमी अलग अलग रूप से अस्थिर है। कोई जोब बदलता रहता है तो कोई मित्र, कोई स्त्री तो कोई घर। परंतु मूल में तो कहीं अस्थिरता है। मेरी ध्यान शिबिर में आने वालों का मूल प्रश्न यही है।

वे लोग इतने सरल तो नहीं होते हैं कि अपनी सारी उलझनों को स्पष्ट करके कहें और अन्य लोगों की उपस्थिति में संकोच का भी अनुभव करते हैं। परंतु उनके अस्पष्ट मन में से कुछ बातें स्पष्ट रूप से बाहर आ जाती हैं। ज्यादातर लोगों का एक ही प्रश्न है कि भीतर अस्थिरता है, शांति नहीं है।

किस विषय में अस्थिरता है यह बात गौण है परंतु अस्थिरता है यह एक कटु वास्तविकता है। इस अस्थिरता का कारण क्या है? मैं कहूँगी कि ध्यान का आभाव।

दोस्तो, ध्यान आपको स्थिरता देता है। स्थिरत्व शांति देता है। शांति संतोष देती है। संतोष आनंद प्रदान करता है और यह आनंद ही परमात्मा है। दोस्तो, इस तरह से ध्यान अस्थिरता से स्थिरत्व की ओर जाने का एक आरंभ है। एक उपाय है। एक रामबाण इलाज है। परंतु मनुष्य ध्यान में भी स्थिर नहीं है। वह पहले सबकुछ पा लेना चाहता है फिर छोड़ना, फिर वैराग्य।

दोस्तो, अगर छोड़ना ही है तो बाद में क्यो? अभी क्यों नहीं? आज क्यों नहीं? आखिर छोड़ने के लिए ही सबकुछ इकट्ठा करना है तो फिर चीज़ों को इकट्ठा करने में समय क्यों गँवाना? यह तो ऐसा हुआ कि पहले में पत्थरों को इकट्ठा करूं फिर फैंक दूं। दोनों में ऊर्जा गंवानी है। परंतु आदमी ऐसा ही करने के लिए सोचता है। वास्तव में वह फैसला करना नहीं चाहता। वह तो केवल संतो से बीबी बच्चे की जिम्मेदारियों का बहाना बनाकर ध्यान से दूर रहना चाहता है। वह जब अपनी इच्छाएं लेकर संतों के पास जाता है, ऐसे में कोई प्रमाणिक संत मिल जाए और उसे कहे कि भाग-दौड़ बंद कर, सब निरर्थक है। तो वह उसे ठगने के लिए कह देता है कि थोड़ी ज़िम्मेदारियाँ हैं, उन्हें पूरी कर लूं फिर सब छोड़ दूंगा। वास्तव में जिम्मेदारियाँ कभी पूरी होती ही नहीं हैं। क्योंकि ज्यादातर ज़िम्मेदारियाँ ऐसी हैं जिन्होंने आपको नहीं पकड़ा है आपने उसे पकड़ रखा है।

दोस्तो, यह तो ऐसा हुआ कि आप कहो कि मैं पहले रस्सी से खुद को बांध लूं फिर छोड़ लूंगा। अगर छूटना ही है तो बांधना क्यों? आप स्वयं को जितना बांधते जाएंगे उतना बंधन गाढ़ होता जाएगा। फिर उस बंधन से इतना मोह हो जाएगा कि खुद तो उस बंधन से मुक्त नहीं हो पाओगे परंतु दूसरा कोई मुक्त करना चाहेगा तो भी आप मुक्त होना नहीं चाहेंगे।

बंधन मुक्त होने का अर्थ मैं ऐसा नहीं करती हूँ कि घर–बार, नौकरी–धंधा छोड़ दो परंतु उसके प्रति इतनी आसक्ति मत रखो कि वह जीवन लीला आसक्ति बन जाए। घर घर भले रहे, धंधा धंधा भले रहे परंतु वह बंधन नहीं बनना चाहिए।

आप कहेंगे कि बात समझ में नहीं आ रही है। आप सही हैं। मैं भी कोई पहेलियाँ बुझाना नहीं चाहती हूँ। मेरी बात की ओर ज़रा ध्यान दो। घर और कारोबार को बंधन बनाने का अर्थ है कि उसे आप अपने सर पर लेकर घूमते रहो। दोस्तो, आजीविका जरूरी है परंतु उसे मुक्ति की रोटी बनी रहने दो, जेल की नहीं। जब आप किसी को स्वयं से ज्यादा महत्व देने लगते हो तब वह आपका प्रेम अथवा आपकी आसक्ति हो सकती है। मैं कहती हूँ कि जगत में प्रेम रहे तब तक ठीक है परंतु प्रेम जब आसक्ति बने तब बंधन है।

आप अपना दायित्व स्वीकार करो यह बात अच्छी है परंतु दायित्व तनाव बन जाए तब यह बंधन है। धन आपकी आवश्यकता पूरी करे तब तक अच्छा है क्योंकि हम जरूरतों को नहीं मार सकते। हम अगर जरूरतों को मार देंगे तो हम ही मर जाएंगे परंतु धन जब आपकी लालसा बन जाए तब वह बंधन है।

मैं यह कहना चाहती हूँ कि अपने इर्द गिर्द कोई भी माहौल हो उसे बंधन मत बनने दो। कुछ भी जब बंधन बन जाता है तब अखरने लगता है। घुटन पैदा होती है। तब ऐसे बंधनों को तोड़ देने को जी चाहता है। परंतु तब तक तो आपके मन ने बंधन के साथ इतना तदात्म्य बना लिया होता है कि उसका टूटना आपका टूटना बन जाता है और उसका बने रहना भी आपका टूटना है।

मैं कहती हूँ कि जीवन में स्थिर भी बनो और गतिशील भी बने रहो। आप कहेंगे कि वह कैसे संभव होगा? मैं कहूँगी कि जो भीतर से

स्थिर है वही वास्विक रूप से गतिशील बन सकता है। मेरा संबंध यहाँ आपके आध्यात्मिक विकास से है। आध्यात्मिक दिशा में गति से है। ऐसी स्थिरता पाने के लिए मैं आपको एक छोटी सी विधि दे रही हूँ, जो मेरे अनुभव में से आई है। फिर से एक बार कहती हूँ कि यह विधि तो मात्र कोडवर्ड जैसी है, उस पर भरोसा करना पड़ेगा, उसका उपयोग करना पड़ेगा; तभी कुछ अलभ्य को प्राप्त कर सकोगे। यह विधि है चक्र गति प्रवेश भाव ध्यान।

प्यारे साधको!

मैं जो विधि बताने जा रही हूँ वह एक सहज प्राप्य और सरल विधि है। जिसमें आप कभी भी उतर सकते हो। आज प्रत्येक घर में बिजली का पंखा सहज उपलब्ध है। एक एकांत कमरे में पंखे को चलाओ उसे देखो। वह एक स्थान पर स्थिर है फिर भी गति कर रहा है और आपके रोम रोम ऊर्जावान होने पर भी आप स्थिर गति नहीं कर सकते हो। पहले पंखे से प्रेरणा लो। स्थिर गति के कारण पंखा शीतलता उत्पन्न करता है वैसे ही आप भी जब स्थिर होकर गतिशील होंगे तब आप स्वयं को और अन्य को भी शांति और शीतलता दे पाएंगे।

एकांत में शांति से बैठकर लगातार चलते हुए पंखे को देखते रहो। उसकी गतिशीलता बढ़ने के साथ पंखे के पंख अदृश्य हो जाएंगे और आपको केवल गति और हवा का अनुभव होगा। धीरे धीरे उस गति के साथ अपनी चेतना को घूमने दो। आधे घंटे के बाद चित्त निर्विचार हो जाएगा। उस निर्विचार अवस्था में बने रहने का प्रयत्न करो जो आपको सविशेष स्थिरता देगा, शांति भी देगा और आंतरिक रूप से गतिशीलता भी। यह गतिशीलता ही मुक्ति का मार्ग है।

धारणा - 163

सूफ़ी ध्यान

ध्यान सूक्ति - 163

साधक ताल से झूमो नाचो, वैश्विक लय के संग बिराजो।

ध्यान विधि - 163

ताल के साथ नाचते झूमते वैश्विक लय में स्थिर हो जाओ।

मैं कहूँगी कि सजदा या नमाज़ तो बार बार उसे अदा करने पड़ते हैं कि जिसे बार बार सर उठाने का होश रहता हो। सूफ़ी तो उसके वास्ते अपने अहंकार को चकनाचूर करके एक बार झुक गया तो झुक गया।

प्यारे साधको!

सूफ़ी गीत-संगीत आत्मा की आवाज़ है, प्रेम की पुकार है, मस्त स्वरों की लहरें हैं, अज्ञात ईश्वर की इबादत है, अनंत में मिलने की प्यास है और ऐसी मौज की गंगोत्री धीरे-धीरे हरिद्वार की पतित-पावनी गंगा की तरह बढ़ती जाती है।

हिन्दुओं की तरह मुस्लिम धर्म में भी कई पंथ और संप्रदाय हैं। इनमें से एक है, सूफी मार्ग। वे सूफी संत परमात्मा को निर्गुण अथवा सगुण की व्याख्या में बांधने से मुक्त रहकर, उस अदृश्य प्रियतम को एक विराट दृष्टि से उपासते रहते हैं। वे प्रकृति के सभी तत्वों में परमात्मा को देखते हैं। दिल के ग़म और ख़ुशियां सबकुछ उसकी याद में मिल जाते हैं। वे इतने संवेदनशील होते हैं कि विरह और मिलन (साधना और साक्षात्कार) दोनों क्षणों में आँसुं बहाते हैं।

साधारण मनुष्य ऐसे असाधारण प्रेम को नहीं समझ सकता। सूफी संतों के चेहरे से प्रसन्नता और होठों से तबस्सुम बिखरता रहता है। प्रेमी लोग उसकीॐखुश्बु को पा लेते हैं।

मूर्ख लोग सूफ़ी भावों को लौकिक अर्थ में लेकर कुछ मूल्यवान को चूक जाते हैं। परंतु सूफ़ी संत का दर्शन (सूक्ष्म को देखने और समझने का) कुछ हटकर होता है। रहस्य से भरी हुए ये दुनियां सूफ़ी को

कुदरत का करिश्मा लगता है। उन करिश्मों का अहसास करते करते वे मस्त फ़कीर उस अज्ञात के इश्क की गहराईयों में यूं उतर जाते हैं जैसे बूंद का दरिए में समा जाना।

मेरा अनुभव कहता है कि सूफी तो एक सहज इश्कपरस्त स्वभाव की उपमा है। यह मिजाज़ कोई दीक्षा से नहीं आ सकता।

सूफी संत धरती, अंबर, चांद, सितारे, नदी, सागर, पेड़, पंछी इत्यादि में अपने प्रेमी का दर्शन करते हैं। जिसे इश्के हक़ीकी कहते हैं। जिसका अर्थ है – इश्वरीय प्रेम, दिव्य प्रेम। ऐसा प्रेम स्वयं ईश्वर या तो कोई संत ही कर सकता है। बेचारे साधारण मनुष्य से कैसे हो पाएगा ऐसा प्रेम!!!

मेरी अनुभूति तो यह है कि सूफी मार्ग इत्तफाक से भले इस्लाम की एक धारा बनी परंतु वास्तव में सूफी तो एक अध्यात्मिक प्रेम और मस्ती की उच्चतम भूमिका का नाम है। जहाँ बेहोशी में होश, फ़ांका–फ़कीरी में भी, अमीरी, दर्द में भी मस्ती और ज़र्रे–ज़र्रे में यार दिखाई देता है। एक अर्थ में विराट प्रकृति उसकी माशूका है।

भारत के उपनिषद् का तत्वमसि चिंतन और सूफ़ियाना इश्क में तात्विक रूप से कोई भेद नहीं। सूफ़ी मार्ग पोथी और पांडित्य का नहीं परंतु फ़ना और फ़िदा होने का रास्ता है। सूफ़ी संत की रग–रग में इश्क को ही इबादत मानना, इल्म को पाना और झूम झूम कर नाचते नाचते ही औरों को अपने रंग में रंग देना और भीतर की गहराईयों से हर शै में उसको पुकारते पुकारते गाना तथा ज़र्रे ज़र्रे में बसे हुए दिलदार को टूट टूटकर प्यार करना – ये सब मस्त मिज़ाज़ी सूफ़ियों में कुदरत ने मानो कूट कूट कर भरा है।

सच्चे सूफ़ी कभी वाद–विवाद में नहीं पड़ते। वे तो अज्ञात के साथ सीधा संवाद करते हैं। वे फायदा और नुकसान दोनों में उसकी मर्ज़ी समझते हैं। स्वयं को कुदरत के हवाले छोड़ देने में ही उसका सच्चा सूफ़ीपन है।

बड़ी मस्ती से गोल गोल घूमता हुआ, आसमान की ओर बाहें फैलाए हुए और प्रेम भरे स्वरों में गाता हुआ सूफ़ी संत लगता है कि मानो पूरी क़ायनात को अपनी बाहों में समेट लेना चाहता है अथवा किसी से कहता है कि मुझको अब तुझमें समा ले। जिससे सूक्ष्म (परमात्मा) और स्थूल (शरीर) की दुविधा हमेशा हमेशा के लिए मिट जाए। अंतरिक्ष में छिपे हुए अल्लाह के आवारा सूफ़ी संत कलियों के खिलने में, तितली के रंग बिरंगे पंखों में, झरनों के बहने में, सूरज चांद और सितारों के चमकने में, बादलों की रिमझिम में और बारिश में धरती से उठती हुई सैंधी ख़ुश्बु में उसके सनम के रहस्य को देख-देखकर "तौबाह...." "तौबाह...." पुकार उठते हैं। ऐसी घटनाओं से ही जाग जाते हैं और नाच नाच कर उसकी बंदगी में खो जाते हैं।

सूफ़ी मार्ग अर्थात कुदरत के पहलू में हरदम घटती हुई घटनाओं का उत्सव मनाते बोध को उपलब्ध हो जाने का रास्ता।

सूफ़ियों के रूहानी भजन और उनकी मस्ती ही उपदेश बन जाते हैं। वे मंदिर-मस्जिद, पूजा-पाठ, तस्बी-माला और तथाकथित धार्मिक नीति नियमों के बंधनों से मुक्त होते हैं। उसके भीतर से उठता इश्क और अल्फाज़ ही उसके भजन हैं।

उसके दिल की धड़कनों की तस्बी अपने आप "तू ही तू" जपती रहती है। उसकी एहमियत (मैं पन) अनंत और अपार में ऐसे पिघल जाती है कि फिर उसे झुक झुककर सजदा करने की जरूरत नहीं रहती।

सजदा या नमाज़ तो बार बार उसे अदा करने पड़ते हैं कि जिसे बार बार सर उठाने का होश रहता हो। सूफ़ी तो उसके वास्ते अपने अहंकार को चकनाचूर करके एक बार झुक गया तो झुक गया।

धरती से लेकर फ़लक तक का विस्तार सूफ़ी के लिए अल्लाह की हाज़री है और उस अल्लाह की पनाह में वह "सब सलामत" का अनुभव करता है। कुछ प्रेमभरे, मीठे, नशीले, दर्द भरे तथा मुर्दे में भी जान फ़ूंक देने वाले मस्तीभरे नग़मों को उस अज्ञात अल्लाह के कदमों

में नज़र करते रहता है। वह ग़ैबी शक्ति उसपर हर पल दुआ बरसाती रहती है।

मस्ती की मदिरा पीकर वे इतने मतवाले हो जाते हैं कि जिस्मानी बातों को बिसर जाते हैं। उन्हें न किसीकी गरज़ होती है न बाहरी मज़हबों की फालतू परज।

ना उसे ज़न्नत की तमन्ना होती है ना जहन्नुम का ख़ौफ। क्योंकि जब ख़्वाहिशें खत्म हो गईं तो स्वर्ग बेचारा बन जाएगा! बेईमानी और अधर्म के होने की कहीं जगह ही नहीं बची तो फिर धरम-ईमान की फ़िक्र क्यों? आहों की असली वजह तो चाहें ही है। चाह मिट गई तो चिंता कैसी?

जब सितमगर में भी सनम को देख लिया तो फिर सितम सितम ना रहा। दुनियां के संत कोई पागल नहीं हैं कि मंसूर जैसे फ़ना होने वालों को आज भी याद करते हैं।

जब रोम-रोम संत बन जाता है तब ऐसा संत नर्क को भी स्वर्ग बना देता है। समग्र अस्तित्व के प्रति अनंत प्रेम के बिना ऐसा नामुमकिन है। सच्चा सूफी धन-दौलत का गुलाम नहीं होता। परंतु उसकी दुआ भरी निगाहों की बख़्शीश पाने के लिए शहनशाह भी तरसते हैं। और ऐसे पल में अमीरों की गरीबी बेपर्दा हो जाती है।

ऐसे सूफी चलते-फिरते जीवंत देवालय हैं, आसमान का छप्पर और ज़मीं के बिछौने से भी वे खुश रहते हैं। हर हाल में खुश-खुशाल रहना यही उसका जीवन मंत्र होता है।

ख़ौफ की परछाइयों के तले (घोर जंगल में भी) अपना बसेरा बनाने वाला सूफी किससे डरेगा! अपने मन के महंत (जिसने मन का महाअंत ला दिया हो), बनकर बैठे हुए सूफ़ी दुनियावी मान-अपमान के उस पार पहुंचे हुए होते हैं। ऐसे सूफ़ियों की कदमबोसी करने वालों का मुक़द्दर बदल जाता है। उनकी हर उलझने सुलझ जाती हैं।

सूफ़ी संत हाथों की लकीरों पर नहीं परंतु अपनी फ़क़ीरी के बल बूते पर जीते हैं, उन्हें मौत की परवाह नहीं होती क्योंकि वह तो बहुत पहले से ही ख़ुद को ख़ाक करके बैठे हैं।

ऐसे सूफ़ी के सामने ज़न्नत की हूर हो या ज़मी का हुस्न – दोनों में केवल अल्लाह का नूर नज़र आता है।

सूफ़ी संत ख़्वाब नहीं देखते परंतु होश के पार के सच में डूबे रहते हैं, जिसे लोग ईश्वर या अल्लाह के नाम से जानते हैं। वही अल्लाह उसका ख़्याब और ख़याल होते हैं। उस अंजान फिर भी जाने हुए ईश्वर का लम्हे भर के लिए भी ख्याल छूटना सूफ़ी संतों के लिए तौहीने मुहब्बत (प्रेम का अपमान) है।

उसके सानिध्य में पाक बंदों पर बिना मांगे दुआ बरसती है और नापाकों के लिए रहम। अल्लाब की ग़ैबी वाणी को सुनने वाला, गैबी शक्ल को देखने वाला, और ग़ैबी आग़ोश में पलने वाला कोई सूफ़ी संत जो मिल जाए तो उसके सामने ही मत्था टेक देना। अगर ऐसा हो गया तो आपकी बंदगी, आजान, पूजा, आरती सबकुछ उसके दरबार में कुबूल हो जाएंगे और बिन मांगे, बिन बताए हर अरज़ी मंजूर हो जाएगी।

मेरी अनुभूति सिर्फ़ इतनी है कि जब मैं भारतीय धर्म परंपरा के पार की बोली और अंदाज़ में बोलती हूँ, लिखती हूँ, गाती हूँ और नाचती हूँ तब मेरे इर्द गिर्द अल्लाह समेत पूरी क़ायनात के कई संत और सूफ़ियों की हाज़री हो जाती है। ये बात यकीन करने वालों के लिए है, भरोसा करने वालों के लिए हैं। शक भरी नज़रें, संगदिल लोग और इश्क को नहीं जानने वालों के लिए नहीं।

मेरी अम्मा (माता) विमलादेवीजी के द्वारा मुझे मिला हुआ प्यार भरा तख़ल्लुस "मोहिनी" से सीधे ही स्वरबद्ध होकर उतरते हुए जावेदा नग़मे, नज़में, ग़ज़लें और शे'रों, शायरियों को जब मैं ख़ुद दोबारा पढ़ती हूँ या गाती हूँ तब लगता है कि मुझसे कुछ भी अलहदा नहीं है।

फ़कीरा चलता जा, कुछ न कुछ सीखता जा
हर पल संभलता जा, मस्ती से गाता जा
साहेब...., साहेब....

चाहे दरिया मिले, चाहे सेहरा मिले
चाहे उल्फ़त मिले, ज़ख्म गहरा मिले

मुड़ के न देख.. आगे तू बढ़ता जा
हर पल संभलता जा.. मस्ती से गाता जा *साहेब...., साहेब....*

साथ दरवेश हो, हुस्न कोई नेक हो
मिले हमराह या फकत तू एक हो
मुड़ के न देख.. दुनिया बिसरता जा
हर पल संभलता जा.. मस्ती से गाता जा *साहेब...., साहेब....*

आशिकी रखना ना रस्तों की तू
माशूक न बनना सरायों का तू
मुड़के न देख हर दम सुमिरता जा
हर पल संभलता जा.. मस्ती से गाता जा *साहेब...., साहेब....*

इज़्ज़त मिले, शोहरत मिले,
लज़्ज़त मिले या ज़िल्लत मिले
मुड़ के न देख होश में रहता जा
हर पल संभलता जा.. मस्ती से गाता जा *साहेब...., साहेब....*

"मोहिनी" ना डरना रहज़नों से तुम
मोहताज रहना ना रहनुमा के तुम
मुड़के न देख मंज़िल में मिलता जा
हर पल संभलता जा.. मस्ती से गाता जा *साहेब...., साहेब....*

प्यारे साधको!

आस्मान की ओर देखकर कुदरत की महेर का प्रतिपल उत्सव मनाने का यह सूफी या दरवेश ध्यान हाथ में चीपिया, मंजीरा या करताल जैसे किसी भी वाद्य के साथ भी कर सकते हो। वाद्य का ताल आपको नाचने में और झूमने में मदद करेगा। आसमान से आशीर्वाद बरसते रहेंगे। वह मौज, मस्ती, आनन्द और स्वतंत्रता ही मुक्ति के क्षण हैं।

एक महाचेतना के परिचय का प्रयास.....

कोई व्यक्ति हो तो हम परिचय भी दें। परंतु एक घूमती फिरती चेतना का परिचय शब्दों से देना कैसे संभव होगा!

प्रबुद्धत्व के प्रवाह में गुरुमैया डॉ हरेश्वरीदेवीजी एक नया उद्‌गम है, एक अपूर्व आरंभ है। आज तक के किसी भी धर्म संप्रदाय सूत्रों में न जुड़कर समाज को एक नई दिशा दर्शन कराने वाली एवं धर्मक्रांति करने वाले तथा ध्यान-योग में एक विशिष्ट खोज करके ध्यान-योग में उत्क्रांति करने वाली विश्व की

प्रथम नारी ऊर्जा है।

प्रत्येक युग में ज्ञान और भक्ति के मार्ग में एक विशेष नारी ऊर्जा का प्रभाव रहा है। वह फिर गार्गी हो, मैत्रेयी हो या मीरा परंतु ध्यान मार्ग में पूज्य गुरूमैया एक नया शुभारंभ है। जिसकी नींव कोई धर्म या दार्शनिक परंपरा पर नहीं है। बचपन से ही निर्भीकता, तेजस्विता, स्वतंत्रता एवं वाणी में ओजस्विता वे उनके सहज गुण रहे हैं।

एकांत स्थान में रहना, प्रकृति को आत्मसात करना और कठिन साधना पद्धतियों से गुजरना एवं शास्त्रों का गहन अध्ययन करना यह गुरूमैया का स्वभाव है।

तथाकथित धर्मगुरुओं, द्वेषपूर्ण हृदय के लोगों, और काले पत्रकारित्व की ओर से उठती हुई बाधाओं के सामने हिमालय की भांति अडिग रहकर समाज को सही धर्म के लिए जगाना ये गुरूमैया का अभियान रहा है।

ऐसी अपूर्व नारी ऊर्जा का जन्म २४ जून अषाढी बीज सन् १९६४ में हुआ। आरंभ के पैतीस वर्ष तक धर्मक्रांति और ध्यानक्रांति के द्वारा मानव मन के परिमार्जन का कार्य किया और अब गुजरात के संस्कार नगरी वडोदरा में ध्यान मंदिर की स्थापना करके लोगों को आध्यात्मिक रूप से सजग कर रहीं हैं। भौतिक सुखों से तृप्त तथापि अतृप्त और शांति के खोजिओं के लिए पूज्य गुरूमैया एक कल्पवृक्ष बनकर आध्यात्मिक छत्रछाया दे रहीं हैं और ध्यान के माध्यम से मनुष्य को आत्मसंतोष के विश्व का दर्शन उनके भीतर ही करा रहीं हैं। पूज्य माँ कहतीं हैं कि–

मुसाफिर हूँ जगाने आई हूँ ख़लक़त के लोगों को।
चली जाऊं तो तुम चुपचाप मेरे काम में लगना।।

उपरोक्त मुक्तक ही प्रबुद्धात्मा गुरूमैया हरेश्वरीदेवीजी के परिचय के लिए काफ़ी है। फिर भी कुछ कहना चाहता हूँ –

प्रबुद्ध रहस्यद्रष्टा माँ हरेश्वरीदेवीजी विश्व के आज तक के ध्यानगुरुओं में सर्वप्रथम एक ऐसी नारी ऊर्जा है कि जिन्होंने ध्यान की अनेक नई विधिओं की शोध की और कुछ प्राचीन विधिओं की पुनर्शोध करके भाषा को सरल बनाकर ध्यान सुक्तियाँ नाम से नया ध्यान शास्त्र रचकर ध्यान पिपासुओं को उन विधियों की वैज्ञानिक समझ भी दी। विश्व को एक ऐसे ध्यान शास्त्र की आवश्यकता थी जिसे मनुष्य आसानी से समझ पाए। एक ऐसे धर्म की जरूरत थी कि जहाँ स्वतंत्रता और स्वच्छंदता के नाम से मानव मूल्यों का ह्रास भी ना हो तथा धर्म के ऐसे जड़ बंधन भी न हों कि जहाँ मानव मुरझा जाए। विश्व को एक ऐसे धर्म की ज़रूरत थी कि जहाँ मनुष्य को भगवद्ता, नैतिकता, मानव मूल्य, ब्रह्मचर्य या अनुशासन सिखाना न पड़े, ना उसके ऊपर ये बातें थोपनी पड़ें परंतु साधक एक ऐसा माहोल प्राप्त करे कि उसकी जीवन शैली सहजता से बदल जाए। शुभ विचार और सद्गुण उसमें पनपने लगें।

विश्व को ऐसा माहोल देने के लिए पूज्य गुरूमैया अंतिम पैतीस वर्ष से विविध मार्ग से आध्यात्मिक पुरुषार्थ कर रहीं हैं। मैं अब स्वानुभव के द्वारा कह रहा हूँ कि अब पूज्य गुरूमैया के द्वारा एक ऐसे माहौल का निर्माण हो चुका है।

पूज्य गुरूमैया अनेकानेक भ्रमजालों में घिरे हुए समाज को धीरे धीरे मुक्त कर रहीं हैं। एक नारी शक्ति के द्वारा उठाई गई ये चुनौति कोई साधारण नहीं है। पूज्य गुरूमैया का जन्म गुजरात-सौराष्ट्र के भावनगर जिले के गढड़ा स्वामीना में एक औदीच्य ब्रह्माण परिवार में २४ जून १९६४ में हुआ। गढड़ा जैसे गाँव में इसे धर्म के एक अति से दूसरी अति पर पहुँची हुए एक कुदरती घटना ही कह सकते हैं। पूज्य गुरूमैया ने सन्यास लेकर कोई नाम नहीं बदला। अपने माता पिता को ही गुरु मानकर अध्यात्म के आसमान में बचपन से ही उड़ना शुरु किया।

एक अपार प्रतिभा संपन्न नारी ऊर्जा का नाम है ध्यानगुरु हरेश्वरीमैया। एक सर्जक, चिंतक, कवयित्री, आयुर्वेदज्ञ, योगिनी, धर्म प्रवक्ता, पुराणों की नवसर्जक, योग-शास्त्र और ध्यान-शास्त्र रचियता उपरांत एक सींगर, कम्पोज़र, ध्यानगुरु और वात्सल्य मूर्ति विश्व माता।

पूज्य गुरूमैया ने सिर्फ १४ साल की उम्र में ज्ञानोपलब्धि के बाद महाभिनिष्क्रमण किया। जीवन के सही दर्शन हेतु वह कूद पड़ी पूर्ण असुरक्षितता में। पर्ण-कुटी लगाकर दो वर्ष तक अन्न त्याग हुआ और आध्यात्मिक संघर्ष के साथ साथ आत्मोन्नति होती गई।

जैन शास्त्र में अनेक प्रकार के सिद्ध कहे हैं-उनमें से एक प्रकार है, स्वयंसिद्ध। पूज्य गुरूमैया को हम स्वयंसिद्ध चेतना कह सकते है। धर्मक्रांति करते करते ही स्वयं के बल बूते पर विद्याप्रेमी पूज्य गुरूमैया ने फिर से अभ्यास शुरु किया। बी.ए., एम.ए. के

बाद एम.एस. यूनिवर्सिटी, बड़ौदा से पीएच.डी. की डिग्री भी प्राप्त की। अपने भीतर पड़ी कलाओं को भी विकसित किया। भारत के कई राज्यों में करोडों लोग पूज्य गुरूमैया के सत्संग, प्रवचन, ज्ञानयज्ञ एवं ध्यान-शिबिरों द्वारा लाभान्वित हुए। गुरूमैया के धर्मक्रांतिपूर्ण विचारों का प्रचंड हकारात्मक प्रतिसाद मिला। ऐसे आरोह अवरोह में से गुज़रकर एक छोटी सी गंगोत्री धर्मक्रांति एवं ध्यानकार्य करते करते अब तो बन गई है एक महासागर।

अनेक नूतन ध्यान विधियों की पुरस्कर्ता पूज्य माँ यूरोप, आफ्रीका और यू.एस.ए. आदि खंडों में धर्मक्रांति और ध्यानशिबिरों के लिए यात्रा कर चुकी हैं। किसी भी धर्मसंप्रदाय के संगठन में जुड़े बिना स्वपुरुषार्थ, आत्मबल और अतिचेतस शक्तियों के द्वारा पूज्य गुरूमैया ने जो नूतन धर्म अभियान का आरंभ किया है उसके लिए पूरा विश्व उसका ऋणी रहेगा तथा नई दृष्टि और नया जीवन पाता रहेगा।

मैं कहता हूँ कि पूज्य गुरूमैया ने विश्व को ध्यान के लिए तंदुरस्त माहोल, विचार, नई दृष्टि एवं दिशाएं दी हैं इसलिए विश्व पूज्य माँ का ऋणि रहेगा। परंतु पूज्य माँ हमेशा कहती हैं कि मैं तो ये सब करके अस्तित्व का ऋण चुका रही हूँ पृथ्वी पर की मेरी यात्रा के दौरान।

-पूज्य गुरूमैया का अनुग्रहपात्र शिष्य
एवं आश्रम का अंतेवासी
योगी स्वामी शैलेश्वर

साधना के सुनहरे सप्त सोपान

१. प्रत्येक विधि अनुभवी ध्यान गुरु के मार्गदर्शन में हो तो ज्यादा अच्छा।

२. प्रत्येक विधियों को अपने ढंग से नहीं परंतु उचित रूप से समझने के बाद ही साधना का आरंभ करें।

३. किसी भी विधि को कम से कम २४ मिनिट करें।

४. अनुकूल विधि में कम से कम ३० दिन से लेकर ९६ दिन तक उतरें।

५. यदि संभव है तो इन ९६ दिनों के दौरान कुदरत के सानिध्य में अथवा किसी शांत आश्रम में निवास करें।

६. सात्विक आहार, सज्जनों का संग, मौन और नशाकारक पदार्थों से दूर रहना – ज्यादा हितकर है।

७. साधना समय के वस्त्र अलग रखें। सफेद, भगवा अथवा हरा रंग ज्यादा सहयोग कर पाएगा। वस्त्र खुले और स्वच्छ होने चाहिए।

-: ध्यान मंदिर :-

ए-५, सनमून पार्क, अकोटा, वडोदरा, गुजरात, भारत
www.maahareshwaridevi.com. email: info@maahareshwaridevi.com